संस्कृत-दीपिका

लेखिका

डॉ० मधुबाला

कादम्बरी प्रकाशन
ए-55/1, सुदर्शनपार्क, नयी दिल्ली-110015

संस्कृत-दीपिका

लेखिका
डॉ० मधुबाला

कादम्बरी प्रकाशन
ए-55/1, सुदर्शनपार्क, नयी दिल्ली-110015

© डॉ० मधुबाला

मूल्य : पन्द्रह रुपये (१५.००)

संस्करण : प्रथम, १९८३

प्रकाशक : कादम्बरी प्रकाशन
ए-५५/१, सुदर्शन पार्क,
नयी दिल्ली-११००१५

मुद्रक : मीनार प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

वितरक : विनीता प्रकाशन
७/२, रूप नगर,
दिल्ली-११०००७

प्राक्कथन

संस्कृत के प्रारम्भिक ज्ञान के लिये डॉ० मधुबाला चावला द्वारा तैयार की गई संस्कृत-दीपिका एक सुन्दर प्रयास है। इस प्रकार की अन्य अनेक पुस्तकें होते हुए भी इस पुस्तक की अपनी विशेषतायें हैं।

संस्कृत सीखने के लिये व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है। यूं तो व्याकरण-शास्त्र अथाह है, परन्तु संस्कृत सीखने के इच्छुक ऐसे व्यक्तियों के लिये, व्याकरण के केवल बहुप्रयुक्त प्रमुख नियम बताना ही पर्याप्त है, जिन्होंने या तो संस्कृत सर्वथा नहीं पढ़ी या निम्न स्तर तक ही पढ़ी है। इसलिये लेखिका ने केवल प्रमुख संधियों, शब्द रूपों और धातुरूपों को ही पुस्तक में स्थान दिया है। इसी प्रकार कुछ अत्यधिक प्रचलित प्रत्ययों के रूप तथा प्रयोग भी बताये गये हैं। इनमें से प्रत्येक प्रकरण में उदाहरण देने से पूर्व लेखिका ने कुशलतापूर्वक उन व्याकरण के रूपों की रचना और प्रयोग के विषय में विशद भूमिका दी है जिससे पाठक को आगे दिये गये उदाहरणों तथा रूपों का ज्ञान हो जाये; वह केवल उन्हें रटने में ही ऊब न जाये। सन्धि के उदाहरण प्रायः पाठ्य अंशों में से ही दिये गये हैं जिससे पाठ्क को सन्धि की व्याव-हारिकता का ज्ञान हो।

पाठ्य अंशों का चयन करते हुए भी डॉ० मधुबाला की दृष्टि में दो बातें प्रमुख रही प्रतीत होती हैं। एक तो यह कि सरलतम पुस्तकों के माध्यम से पाठक का संस्कृत साहित्य से परिचय कराया जाये और दूसरे संस्कृत के उन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का ज्ञान कराया जाये जिनके विषय में प्रायः सुना जाता है। पाठक की सुविधा के लिये गीता के श्लोकों का अन्वय सहित पदार्थ तथा पञ्चतन्त्र के गद्य के एक-एक शब्द का अर्थ देकर, जहाँ भाव स्पष्ट करने के लिये आवश्यक है, वहाँ संक्षिप्त व्याख्या सम्बन्धी टिप्पणियाँ भी दी गई हैं।

डॉ० मधुबाला चावला ने बहुत परिश्रमपूर्वक तथा सूझ-बूझ से यह पुस्तक तैयार की है। वास्तव में नये संस्कृत पाठकों के लिए इस प्रकार की छोटी पुस्तक की बहुत आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक उस अभाव की पूर्ति करेगी। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इस पुस्तक के माध्यम से न केवल पाठक संस्कृत-साहित्य के अध्ययन में प्रवृत्त होगा, अपितु उसे स्वयं समझने की प्रारम्भिक योग्यता भी प्राप्त करेगा।

डॉ० कृष्ण लाल,
उपाचार्य, संस्कृत विभाग
दिल्ली वि० वि०, दिल्ली

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक एक संग्रह है जिसमें संस्कृत भाषा को जानने के इच्छुक विद्यार्थियों के लिए सामान्य व्याकरण, कुछ पंचतन्त्र की कथाएं एवं गीता का सोलहवाँ अध्याय रखा गया है। किसी भी भाषा को सीखने के लिए उसका व्याकरण जानना अत्यावश्यक है अन्यथा व्यक्ति भाषा के प्रति औचित्य निर्वाह नहीं कर सकता।

कथा किसी भी विषय के स्पष्टीकरण के लिए सरलतम उपाय है अतः इसमें पंचतन्त्र की कुछ कथाओं का संग्रह रखा गया है। पंचतन्त्र में संस्कृत गद्य का सरल और स्वाभाविक रूप प्रकट होता है। इसकी कथाएं विश्व-विख्यात होने के साथ-साथ सहज ही नीति की बातें सिखाने में सहायक हैं।

भगवद् गीता हमारे धार्मिक ग्रंथ महाभारत का जगत्प्रसिद्ध अंश है और इसका उपदेश न केवल उस काल में प्रासंगिक था प्रत्युत आज भी उतना ही उपयोगी है। गीता हमें जीवन से भागने का सन्देश न देकर सदा संघर्षरत रहकर कर्त्तव्य कर्म करने का सन्देश देती है, अतः प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह जीवन-सन्देश है। किन्तु पूर्ण गीता को पुस्तक में रखना तो ग्रंथ-विस्तार के भय से एवं विद्यार्थियों के लिए बनाए गए सरल संग्रह के उद्देश्य से सम्भव नहीं है। इस दृष्टि से इसमें गीता का सोलहवाँ अध्याय संग्रहीत किया गया है। गीता का यह अध्याय गीता की मूल-भावना को स्पष्ट करने में सहायक होगा ऐसा मेरा विश्वास है।

मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक संस्कृत-भाषा में प्रवेश पाने की इच्छा रखने वाले प्रत्येक विद्यार्थी के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रस्तुत संग्रह की प्रेरणार्थ मैं डॉ० कृष्णलाल (रीडर, संस्कृत-विभाग, दिल्ली-विश्वविद्यालय) एवं डॉ० प्रशान्त वेदालङ्कार (प्राध्यापक, हंसराज कॉलिज दिल्ली-विश्वविद्यालय, दिल्ली) की अत्यन्त आभारी हूं; जिनकी सतत प्रेरणा स्वरूप यह पुस्तक इस रूप में उपस्थित हो सकी है। डॉ० कृष्णलाल ने न केवल इसकी प्रेरणा दी अपितु इसके लेखन में अनेक सुझाव और हस्तलिखित प्रति को देखने के लिए समय देकर मुझे अनुगृहीत किया है। प्रस्तुत पुस्तकार्थ प्राक्कथन लिखने के लिए मैं उनकी अत्यन्त आभारी हूँ।

इस कार्य के लिए मैं पं० शुचिव्रत जी की अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरी हस्तलिखित प्रति को सुनकर मुझमें न केवल आत्मविश्वास को बढ़ाया है अपितु इस पुस्तक के फाइनल प्रूफ देखकर उन्होंने मेरे साथ श्रम-विभाजन भी कर लिया है।

मैं अपनी देवरानी श्रीमती रेखा चावला की विशेष रूप से आभारी हूं जिन्होंने पुस्तक लेखन के समय पंचतन्त्र एवं भगवद्गीता के मूल-पाठ को लिखने में मेरी सहायता की।

अन्त में मैं इस पुस्तक के मुद्रक श्री रवि जी एवं प्रकाशक श्री हरिवंश अनेजा जी का हार्दिक धन्यवाद करती हूं जिनके प्रयत्न स्वरूप यह पुस्तक इस रूप में प्रस्तुत हो सकी है।

—मधुबाला

विषय-सूची

	पृष्ठ
प्राक्कथन	३
भूमिका	४

भाग क

संस्कृत मूल ग्रन्थ

१. श्रीमद्भगवद्गीता-सोलहवाँ अध्याय	१-१०
२. पञ्चतन्त्र-अपरीक्षितकारकम्	११-५२
(क) क्षपणक-कथा	१२-२२
(ख) ब्राह्मणीनकुल-कथा	२३-२५
(ग) लोभाविष्टचक्रधर-कथा	२६-३६
(घ) सिंहकारकमूर्खब्राह्मण-कथा	३७-४०
(ङ) मूर्खपण्डित-कथा	४१-४६
(च) मत्स्यमण्डूक-कथा	४७-५२

भाग ख

व्याकरण

१. सन्धि—	१-७
दीर्घ, गुण, वृद्धि, यण्, अयादि, पूर्वरूप, अनुस्वार, परसवर्ण, विसर्ग ।	
२. शब्द रूप—	८-२८
(क) अकारान्त पुंल्लिग, अकारान्त नपुंसकलिङ्ग, आकारान्त पुंल्लिङ्ग, आकारान्त स्त्रीलिङ्ग, इकारान्त पुंल्लिङ्ग, इकारान्त स्त्रीलिङ्ग, इकारान्त नपुंसकलिङ्ग, ईकारान्त पुंल्लिङ्ग, ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग, उकारान्त पुंल्लिग, उकारान्त नपुंसकलिग, उकारान्त विशेषण शब्द, ऊकारान्त पुंल्लिग, ऋकारान्त पुंल्लिङ्ग, ऋकारान्त नपुंसकलिङ्ग ।	९-१८
(ख) सर्वनाम शब्द—सभी लिङ्गों में	१८-२४
सर्व, यत्, तत्, एतत्, किम्, अस्मद्, युष्मद् ।	

(ग) हलन्त शब्द— २४-२८

मरुत्, बलवत्, गतवत्, राजन्, आत्मन्, धनिन्, वाच्, सरित्, परिषत्, विपद्, जगत्, नामन् ।

३. प्रक्रिया— २८-३२

कृत्प्रत्यय—

क्त, क्तवतु, क्त्वा (ल्यप्), तव्यत्, अनीयर्, यत्, तुमुन् ।

४. क्रिया-रूप—लट्, लृट्, लोट्, लङ्ग लकारों में— ३२-६८

वद्, दृश्, हस्, पा, खाद्, जि, नी, सेव्, लभ्, ब्रू, अस्, हन्, दा, दिव्, मृ, नृत्, चि, भिद्, छिद्, मुच्, विद्, प्रच्छ, सृज्, कृ, ज्ञा, चुर्, कथ् गण, भक्ष् ।

श्रीमद्भगवद्गीता

'श्रीमद्भगवद्गीता' यद्यपि महाभारत जैसे विशालकाय ग्रन्थ का अंश है, किन्तु धार्मिक और दार्शनिक महत्त्व के कारण उसका एक स्वतन्त्र स्थान बन गया है। महाभारत के भीष्म पर्व में युद्ध आरम्भ होने से पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण ने कर्त्तव्य और मोह के संघर्ष से विमूढ़ अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था। महाभारत के प्रलयंकारी संग्राम के लिए आमने-सामने दोनों सेनायें तैयार खड़ी थीं। जिनमें अधिकांश भाई बन्धु ही थे। ऐसी स्थिति में अर्जुन का विषादयुक्त होना अति स्वाभाविक था। इस प्रकार सांसारिक परिस्थितियों के बीच पड़कर कर्त्तव्य और भावना का संघर्ष रखने वाले मानव का प्रतिनिधित्व हमें अर्जुन में दृष्टिगोचर होता है। असमञ्जस की अवस्था में पड़ा हुआ प्रत्येक किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्ति अर्जुन है। ऐतिहासिक प्रसंग से आबद्ध होने पर भी गीता का विषय एक विश्व-दर्शन है। इसके अठारह अध्यायों के सात सौ श्लोकों में मोक्षप्राप्ति के उपाय इतनी सरल भाषा में अभिव्यक्त किये गये हैं कि सर्वसाधारण उन्हें सरलता से समझ सकता है।

गीता के महत्त्व का कारण उसकी समन्वय दृष्टि है। कर्म, ज्ञान और भक्ति का जैसा सुन्दर समन्वय गीता में किया गया है वैसा अन्यत्र अप्राप्य है। गीता में सम्पूर्ण वैदिक एवं उपनिषत्-सम्वन्धी विचारधारा समाहित हो गई है। गीता का अध्यात्मपक्ष जितना समन्वयात्मक है उसका व्यवहार-पक्ष भी उतना ही आकर्षक है। गीता की शिक्षा आज भी उसी प्रकार उपयोगी तथा उपादेय है जिस प्रकार वह महाभारतकाल में थी। गीता हमें जीवन-संग्राम से भागने का उपदेश नहीं देती, प्रत्युत संसार में डटकर खड़ा होने, अपनी विपरीत परिस्थितियों से जूझने तथा अन्त में विजय पाने की उदात्त शिक्षा देती है। अतः गीता का आकर्षण सब समयों के लिए, सब परिस्थितियों के लिए एवं सब मानवों के लिए समान रूप से है। गीता में कुल १८ अध्याय हैं, हम यहाँ १६वें अध्याय को विस्तार से प्रस्तुत करेंगे।

षोडश अध्याय—ज्ञान-कर्म समन्वय, आत्मा की नित्यता, उत्तम पुरुष के लक्षण सब कार्यों को ईश्वर को समर्पित करने की भावना, ईश्वर का विराट् रूप आदि वर्णनों के द्वारा अर्जुन को युद्ध की प्रेरणा देते हुए इस अध्याय में उत्तम गुणों से युक्त पुरुषों के उत्तम भविष्य का संकेत करके यह बताया गया है कि किस प्रकार कर्तव्य-पालन करने वाला व्यक्ति उत्तम होता है।

इस अध्याय में कुल चौबीस श्लोक हैं। पहले पांच श्लोकों में दैवी एवं आसुरी संपदा को प्राप्त पुरुषों के लक्षण कहे गए हैं। इनमें दैवी संपदा को मुक्ति के लिए और आसुरी संपदा को बांधने वाली कहा गया है। छठे से बीसवें तक के श्लोकों में आसुरी संपदा वालों के लक्षण तथा उनकी अधोगति का वर्णन है। इस जगत् को ईश्वर-रहित मानकर मात्र विषय-वासनाओं में लिप्त रहने वाले

आसुरी प्रकृति के लोग शूकर, कूकर आदि नीच योनियों में उत्पन्न होते हैं। इक्कीसवें एवं बाईसवें श्लोकों में काम, क्रोध एवं लोभ को नरक का द्वार कहा है। अन्तिम दो श्लोकों में कर्त्तव्य एवं अकर्त्तव्य की स्थिति में शास्त्र-संमत कार्य को करने पर ही बल दिया गया है।

व्याख्या-सहित श्लोक

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥१॥

अभयम्=भय का पूर्णतः अभाव, सत्त्वसंशुद्धिः=अन्तःकरण की पूर्ण स्वच्छता, ज्ञानयोग-व्यवस्थितिः=तत्त्वज्ञान के लिए ध्यानयोग में निरन्तर दृढ़ स्थिति, च=और, दानम्=सात्त्विक दान, दमः=इन्द्रियों पर नियन्त्रण, यज्ञः=भगवान् की पूजा, अग्नि-होत्रादि तथा दानादि उत्तम कार्यों का आचरण और सज्जनों से संगति, स्वाध्यायः=वेद-शास्त्रों के पठन-पाठन सहित भगवान् के नाम और गुणों का संकीर्तन, च=तथा, तपः= स्वधर्म-पालन के लिए कष्ट सहन करना, (एवं) आर्जवम्=शरीर और इन्द्रियों सहित अन्तःकरण की सरलता, (ये सब दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं।)

भाव—प्रारम्भ के तीन श्लोकों में दैवी सम्पदा को प्राप्त करने वाले उत्तम प्रकृति के व्यक्तियों की विशेषतायें बताई गई हैं। जो संसार में अनासक्त भाव से रहते हैं, अपने कर्त्तव्य का पालन करने में किसी भी परिस्थिति का सामना करने को तत्पर रहते हैं तथा जो सबके प्रति समभाव रखते हैं वे ही मनुष्य दैवी सम्पदा को प्राप्त होते हैं। इस उपदेश के माध्यम से श्रीकृष्ण अर्जुन को मानसिक रूप से युद्ध के लिए तैयार करना चाहते हैं कि वह क्षत्रिय है और उसे क्षत्रियोचित धर्म का पालन करना चाहिए। स्वधर्म-पालन के समय स्वजन के प्रति भी आसक्ति का होना उचित नहीं है। स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहन कर भी हमें अपने कर्त्तव्य-पथ पर अटल रहना चाहिए।

टिप्पणी—

ज्ञानयोगव्यवस्थितिः—परमात्मा के स्वरूप को जानने के लिए एकमात्र परमात्मा में निरन्तर ध्यान लगाने की स्थिति।

दान—दान से अभिप्राय सात्विक दान से है अर्थात् जो दान प्रत्युपकार की भावना से न देकर मात्र शुद्ध रूप से देने की भावना से किया जाए।

यज्ञ—यज्ञ शब्द यज् धातु से निष्पन्न है। जिसका अर्थ है—देवों की पूजा करना, सत्सङ्गति करना और दान करना (यज् देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु)। प्रस्तुत श्लोक में भी यज्ञ शब्द से यही तीनों भाव अभिप्रेत हैं।

तप—स्वधर्माचरण से इन्द्रियादि को तपाकर शुद्ध करने का नाम तप है।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥२॥

अहिंसा=मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना, सत्यम्=यथार्थ और प्रिय भाषण, अक्रोधः=क्रोध का सर्वथा न होना, त्यागः=त्याग,

शान्तिः=चित्त की चंचलता का अभाव, अपैशुनम्=किसी की भी निन्दादि न करना, भूतेषु=सब भूतों (प्राणियों) में, दया=कारण-रहित दया, अलोलुप्त्वम्=इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर भी आसक्ति का अभाव, मार्दवम्=कोमलता, ह्रीः=लोक और शास्त्र-विरुद्ध आचरण में लज्जा, अचापलम्—मन की स्थिरता, (ये सब दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं)।

भाव—विषयों के न होने पर आसक्ति का न होना अति स्वाभाविक है किन्तु उत्तम कोटि का पुरुष वही है जो विषयों के साथ संयोग होने पर भी अनासक्त रहने की क्षमता रखता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्त्तव्य-पालन के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं कि यद्यपि युद्ध में स्वजन का होना आसक्ति का कारण है किन्तु युद्ध में तुम्हें स्वयं को मात्र योद्धा समझना चाहिए और योद्धा के लिए स्वजन और परजन में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। रणभूमि में स्वजन के प्रति भी अनासक्त रहने वाला व्यक्ति ही उत्तम कोटि का पुरुष हो सकता है।

टिप्पणी—

त्याग—अभिमान का त्याग। अर्थात् किसी भी कार्य को करने वाला मैं हूँ, इस भावना का त्याग। जब कार्यों में कर्त्तापन (अहं की भावना) को छोड़ देते हैं तो आसक्ति स्वयमेव समाप्त हो जाती है। अथवा मनुष्य की स्वत्व अर्थात् अपने सभी पदार्थों की उपयुक्ततर प्रयोक्ता के लिए त्याग की भावना।

अपैशुनम्—दूसरे की निन्दा (बुराई) करना मानवीय दुर्बलता है। मानवीय दुर्गुणों पर विजय पाने वाला व्यक्ति ही दैवी सम्पदा को प्राप्त करता है अर्थात् उत्तम कोटि को प्राप्त करता है।

अलोलुप्त्वम्—इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर आसक्ति (लिप्तता) होना अति स्वाभाविक है। सामान्य व्यक्ति इस लोलुपता अर्थात् आसक्ति के लोभ को नहीं छोड़ पाता और विषयों में लिप्त हो जाता है। किन्तु उत्तम कोटि के पुरुष इस लोभ का त्याग कर देते हैं।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत॥३॥

तेजः=तेज, क्षमा=क्षमा, धृतिः=धैर्य, शौचम्=बाहर-भीतर की शुद्धि, अद्रोहः=शत्रु-भाव का अभाव, नातिमानिता=बड़प्पन के अतिशय अभिमान का अभाव (ये सब), भारत=हे अर्जुन! दैवीम्=दैवी, संपदम्=संपदा को, अभिजातस्य=प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण, भवन्ति=हैं।

भाव—राग, द्वेष, अहंकार आदि मानवीय दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करने पर ही व्यक्ति दैवी सम्पदा को प्राप्त होता है।

टिप्पणी—

तेज—तेज उत्तम पुरुषों की वह शक्ति है जो विषयासक्त और नीच प्रकृति वाले पुरुष को श्रेष्ठ कार्यों में प्रवृत्त कराने की क्षमता रखती है।

शौचम्—शोधक पदार्थ जल आदि से शरीर की शुद्धि को बाहर की शुद्धि कहते हैं तथा राग-द्वेष आदि विकारों का नाश होकर अन्तःकरण का स्वच्छ हो जाना भीतर की शुद्धि कही जाती है। 'शौचम्' में ये दोनों ही स्वच्छताएं आ जाती हैं।

अद्रोहः—दैवी संपदा से युक्त व्यक्ति सर्वत्र भगवद्-बुद्धि हो जाने से अति अपराध करने वाले से भी द्रोह नहीं करता औरों से तो करने का प्रश्न ही नहीं।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥४॥

पार्थ=हे अर्जुन! दम्भः=पाखण्ड, दर्पः=घमण्ड, च=और, अभिमानः=अभिमान, च=तथा, क्रोधः=क्रोध, च=और, पारुष्यम्=कठोरता, (एवं) अज्ञानम्=अज्ञान, एव=भी (यह सब), आसुरीम्=आसुरी, संपदम्=संपदा को, अभिजातस्य=प्राप्त हुए पुरुष के (लक्षण हैं)।

भाव—अब श्रीकृष्ण आसुरी-संपदा से युक्त पुरुष के लक्षण बताते हैं कि उसमें समस्त मानवीय दुर्बलताएं होती हैं। वह अज्ञानवश समस्त कार्यों का कर्त्ता स्वयं को मानता हुआ अभिमानी हो जाता है।

टिप्पणी—

दम्भः—अपने साधारण महत्त्व को झूठी बातों अथवा प्रसारों से अतिशय महिमा वाला प्रकट करके, सरल प्रकृति वाले दूसरों को सन्मार्ग से हटाकर अपनी ओर आकर्षित करना दम्भ है।

पार्थ—पाण्डवों की माता कुन्ती का दूसरा नाम पृथा था, अतएव युधिष्ठिर, भीम, और अर्जुन को पार्थ कहते थे किन्तु विशेषतया अर्जुन की पार्थ संज्ञा थी।

दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥५॥

दैवी संपत्=दैवी संपदा, विमोक्षाय=मोक्ष के लिए, आसुरी=आसुरी, निबन्धाय=बांधने के लिए (आवागमन में बांधने के लिए होती है), मता=मानी गई है, अतः=इसलिए, पाण्डव=हे अर्जुन!, मा शुचः=शोक मत कर, यतः=क्योंकि, (तू) दैवीम्=दैवी, संपदम्=संपदा को, अभिजातः=प्राप्त हुआ, असि=है।

भाव—यज्ञ, दानादि उत्तम कार्यों को करने वाला मनुष्य दैवी संपदा को प्राप्त करता है और दैवी संपदा को प्राप्त व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त करता है अर्थात् संसार में आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाता है। इसके विपरीत कर्त्तव्याकर्त्तव्य-विवेक-शून्य व्यक्ति आसुरी संपदा को प्राप्त कर आवागमन के चक्कर में फंसा रहता है।

टिप्पणी—

मा शुचः—शोक मत कर। अभिप्राय यह है कि अर्जुन के लिए शोक करने का कोई अवसर नहीं है क्योंकि उसका आसुरी सम्पदा से कोई भी सम्पर्क नहीं है। वह दैवी

सम्पदा को प्राप्त हुआ है और उस सम्पदा को प्राप्त व्यक्ति के लिए मोक्ष का मार्ग खुला है।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥६॥

पार्थ=हे अर्जुन !, अस्मिन्=इस, लोके=संसार में, भूतसर्गौ=मनुष्यों की सृष्टि (रचना), द्वौ=दो प्रकार की, दैवः=देवों से संबंध रखने वाली, च=और (दूसरा), आसुरः=असुरों से सम्बन्ध रखने वाली (है), दैवः=देवों की सृष्टि, एव=ही, विस्तरशः=विस्तारपूर्वक, प्रोक्तः=भली प्रकार बतला दी गई है (इसलिए) आसुरम्=असुरों की सृष्टि को भी (विस्तारपूर्वक), मे=मुझसे, शृणु=सुन।

भाव—इस संसार में दो प्रकार के स्वभाव वाले मनुष्यादि होते हैं—उत्तम प्रकृति वाले और नीच प्रकृति वाले। उत्तम प्रकृति वाले दैवी सृष्टि के अन्तर्गत और नीच प्रकृति वाले आसुरी सृष्टि के अन्तर्गत आते हैं।

टिप्पणी—

भूत—उत्पन्न हुए मात्र को भूत कहते हैं। किन्तु यहाँ मनुष्यों के सम्बन्ध में चर्चा चल रही है अतः यहाँ विशेष रूप से मानवीय-सृष्टि अभिप्रेत है।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥७॥

आसुराः=आसुरी स्वभाव वाले, जनाः = मनुष्य, प्रवृत्तिम् = करणीय कार्य में प्रवृत्त होने को, च=और, निवृत्तिम्=अकरणीय कार्य से निवृत्त होने को, च=भी, न=नहीं, विदुः=जानते हैं, तेषु=उनमें, न=न, शौचम्=बाहर-भीतर की शुद्धि है, न=न, आचारः=श्रेष्ठ आचरण है, च=और, न=न, सत्यम्=सत्य-भाषण, अपि=ही, विद्यते=है।

भाव—आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य कर्त्तव्याकर्त्तव्य-विवेक-शून्य होते हैं और उनमें सदाचार का अभाव होता है।

टिप्पणी—

प्रवृत्ति-निवृत्ति—संसार में रहते हुए फल और आसक्ति को त्यागकर सद्बुद्धि से केवल करणीय-कार्यों में लगाव प्रवृत्ति और निंद्य तथा हेय कार्यों से पृथक् रहना निवृत्ति है।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥८॥

ते=वे आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य, आहुः=कहते हैं, जगत्=संसार, अप्रतिष्ठम्=आश्रय रहित, असत्यम्=मिथ्या, अनीश्वरम्=बिना ईश्वर के, अपरस्पर संभूतम्=अपने आप स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है, अतः=इसलिए, कामहैतुकम्=केवल भोगों को भोगने के लिए, एव=ही, (है), अन्यत=इसके अतिरिक्त और, किम्=क्या है।

भाव—आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं रखते। वे संसार को मात्र भोग्य मानते हैं और इसीलिए विषय-वासनाओं में लिप्त रहते हैं।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥९॥

एताम्=इस, दृष्टिम्=मिथ्या ज्ञान का, अवष्टभ्य = आश्रय लेकर, नष्टात्मानः=नष्ट विचार शक्ति वाले, अल्पबुद्धयः=मन्द बुद्धि, अहिताः=हित रहित, उग्र-कर्माणः=क्रूरकर्मी मनुष्य, जगतः=संसार का, क्षयाय=नाश करने में, प्रभवन्ति =समर्थ होते हैं।

भाव—इस श्लोक में आसुरी वृत्ति वालों के दुराचार का वर्णन है। ईश्वर की सत्ता को न मानने के कारण वे आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य स्वच्छन्द हुए अपने क्रूर कर्मों से जगत् का नाश ही करते रहते हैं।

टिप्पणी—

एतां दृष्टिम्—आसुरी प्रकृति वाले लोग इस जगत् को आश्रय-रहित, बिना ईश्वर के मात्र स्त्री-पुरुष के संयोग से उद्भूत मानने के कारण इस मिथ्या दृष्टि से युक्त हो जाते हैं।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमान-मदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥१०॥

दम्भमान-मदान्विताः=पाखण्ड, घमण्ड और मद से युक्त हुए, दुष्पूरम् =किसी प्रकार भी न पूर्ण होने वाली, कामम्=कामना का, आश्रित्य=आश्रय लेकर (तथा), मोहात्=अज्ञान से, असद्ग्राहान्=मिथ्या सिद्धान्तों को, गृहीत्वा= ग्रहण करके, अशुचि-व्रताः=भ्रष्ट आचरणों से युक्त हुए (संसार में), प्रवर्तन्ते= व्यवहार करते हैं।

भाव—विषय-वासनाओं की कभी तृप्ति नहीं होती। विषय-वासनाओं में फंसा मनुष्य भ्रष्ट आचरण वाला हो जाता है।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥११॥

प्रलयान्ताम्=मरणपर्यन्त रहने वाली, अपरिमेयाम्=अनन्त, चिन्ताम्= चिन्ता का, उपाश्रिताः=आश्रय लिये हुए, च=और, कामोपभोग-परमाः=विषय भोगों के भोगने में तत्पर हुए, एतावत्=इतना मात्र ही (उनका मन्तव्य है), इति=ऐसा, निश्चिताः=निश्चित है।

भाव—आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की चिन्ताओं से ही घिरे रहते हैं। वे विषयभोगों के भोगने में ही आनन्द मानते हैं। इस प्रकार के अज्ञानवश संसार रूपी भंवर में फंसकर चक्कर ही काटते रहते हैं अर्थात् आवागमन के चक्कर में पड़ जाते हैं, जब तक कि उनकी प्रवृत्ति में अन्तर न आ जाए अर्थात् वे जब

आसुरी वृत्ति को त्यागकर दैवी-वृत्ति वाले हो जाते हैं तब ही उनका मोक्ष सम्भव है।

टिप्पणी—

चिन्ताम्—दैवी सम्पत्ति वाले व्यक्ति निश्चिन्त रहते हैं, किन्तु आसुरी सम्पत्ति वाले व्यक्ति सदा चिन्तातुर रहते हैं। चिन्ता रहित होना सुख और शान्ति का कारण है और चिन्ता युक्त होना दुःख और अशान्ति का। चिन्तातुर व्यक्ति जीता हुआ भी मरे हुए के समान होता है।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥१२॥

आशा-पाशशतैः=आशा रूप सैंकड़ों फांसों से, बद्धाः=बंधे हुए, कामक्रोध-परायणाः=काम-क्रोध में लीन हुए, काम-भोगार्थम्=विषय-भोगों की पूर्ति के लिए, अन्यायेन=अन्यायपूर्वक, अर्थ-सञ्चयान्=धनादि पदार्थों की (संग्रह करने की), ईहन्ते =चेष्टा करते हैं।

भाव—आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य जीवन में अनेक आशाएं बांध लेते हैं और उन आशाओं के पूर्ण न होने पर काम, क्रोध के वशीभूत होकर अनुचित प्रकार से धनादि का संग्रह करते हैं।

टिप्पणी—

आशापाशशतैः—जैसे सूत्र के पाश में बंधे हुए पशु-पक्षी स्वतन्त्रता त्यागकर पाश के अधीन हो जाते हैं, उसी प्रकार आसुरी वृत्ति वाले व्यक्ति आशा रूपी पाश में बंधे हुए उससे स्वतन्त्रता पाने के विचार से हीन हुए आवागमन के बन्धन में ही पड़े रहते हैं।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥१३॥

मया=मैंने, अद्य=आज, इदम्=यह, लब्धम्=लिया है, इमम्=इस, मनोरथम्=मनोरथ को, प्राप्स्ये=प्राप्त होऊंगा, मे=मेरे पास, इदम्=यह, धनम्=धन, अस्ति=है, पुनः=फिर, अपि=भी, इदम्=यह, भविष्यति=होएगा।

भाव—इस श्लोक में आसुरी प्रवृत्ति वालों के ममता और अहंकार युक्त अनेक मनोरथों का वर्णन है। आसुरी वृत्ति वाले मनुष्यों की तृष्णा कभी समाप्त नहीं होती। जितनी अधिक उनकी कामनाएं पूर्ण होती हैं उससे कहीं अधिक कामनाएं उनमें उत्पन्न हो जाती हैं।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥१४॥

असौ=वह, शत्रुः=शत्रु, मया=मेरे द्वारा, हतः=मारा गया, अपरान्=दूसरे शत्रुओं को, अपि=भी, अहम्=मैं, हनिष्ये=मारूंगा, अहम्=मैं, ईश्वरः=ईश्वर, च=और, भोगी=ऐश्वर्य को भोगने वाला हूँ, अहम्=मैं, सिद्धः=

सब सिद्धियों से युक्त अथवा सब कार्यों को करने में सिद्धहस्त, बलवान्=बलवान् (तथा), सुखी=सुखी हूं।

भाव—आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य अज्ञानता एवं अहंकारवश सब कार्यों का कर्त्ता अपने को मानने लगते हैं।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥१५॥

आढ्यः=बड़ा धनवान्, अभिजनवान्=बड़े कुटुम्ब वाला, अस्मि= हूँ, मया=मेरे, सदृशः=समान, अन्यः=दूसरा, कः=कौन, अस्ति=है, यक्ष्ये=यज्ञ करूंगा, दास्यामि=दान दूंगा, मोदिष्ये=हर्ष को प्राप्त होऊंगा, इति=इस प्रकार के, अज्ञान-विमोहिताः=अज्ञान से मोहित हैं।

भाव—अज्ञानतावश आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य अपने को ही सबसे बड़ा धनवान्, धर्म कार्यों को करने वाला और दानी मानने लगते हैं।

अनेक-चित्त-विभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥१६॥

अनेक-चित्त-विभ्रान्ताः=चित्त की अनेक भ्रान्तियों से युक्त (संशय आत्मा), मोहजाल-समावृताः=मोह-रूप जाल में फंसे हुए, काम-भोगेषु, = विषय-भोगों में, प्रसक्ताः=अत्यन्त आसक्त हुए, अशुचौ=महान् अपवित्र, नरके=नरक में, पतन्ति =गिरते हैं।

भाव—इस श्लोक में आसुरी वृत्ति वाले व्यक्तियों की क्या गति होती है, इसे स्पष्ट किया गया है। मोह-रूपी जाल में फंसे हुए वे आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य घोर नरक में जाते हैं।

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥१७॥

ते=वे (आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य), आत्म-संभाविताः=अपने आपको ही श्रेष्ठ मानने वाले, स्तब्धाः=विवेकहीन, धनमान-मदान्विताः=धन और मान के मद से युक्त हुए, अविधि-पूर्वकम्=शास्त्रविधि से रहित, नामयज्ञैः=नाममात्र के यज्ञों द्वारा, दम्भेन=पाखण्ड से, यजन्ते=यजन करते हैं।

भाव—आसुरी वृत्ति वाले व्यक्तियों का यज्ञ करना भी अपने आपको धोखा देना है, क्योंकि वे मात्र दिखावे के लिए यज्ञ करते हैं और यज्ञ में शास्त्रीय विधि के औचित्य का भी ध्यान नहीं रखते।

टिप्पणी—

अविधिपूर्वकम्—शास्त्र-विधि-रहित। शास्त्र-विधि के अनुसार किये गए यज्ञादि कर्म ही फलदायी होते हैं। इसके विपरीत किये गए यज्ञ का कोई लाभ नहीं होता।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥१८॥

अहंकारम्=अहंकार, बलम्=बल, दर्पम्=घमण्ड, कामम् = कामना, च=और, क्रोधम् च संश्रिताः=क्रोध के आश्रित, अभ्यसूयकाः=ईर्ष्या करने वाले पुरुष, आत्म-परदेहेषु=अपने और दूसरों के शरीरों में, माम्=मुझ अन्तर्यामी से, प्रद्विषन्तः=द्वेष करने वाले हैं।

भाव—अहंकार, काम, क्रोधादि समस्त मानवीय दुर्बलताओं से युक्त आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य अन्तर्यामी परमात्मा से भी द्वेष करने में पीछे नहीं रहते। यह वृत्ति उनके अज्ञान का परिचय देती है।

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥१९॥

तान्=उन, द्विषतः=द्वेष करने वाले, अशुभान्=पापाचारी क्रूरान्=क्रूर कार्यों को करने वाले, नराधमान्=नराधमों को, अहम्=मैं, संसारेषु=संसार में, अजस्रम्=बारम्बार, आसुरीषु=आसुरी, योनिषु=योनियों में, एव=ही, क्षिपामि=गिराता हूं।

भाव—अन्तर्यामी परमात्मा से द्वेष करने वाले मनुष्यों को बारम्बार आसुरी योनियों की ही प्राप्ति होती है।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥ २० ॥

कौन्तेय=हे अर्जुन! मूढाः=वे मूढ पुरुष, एव=ही, माम्=मुझको, अप्राप्य=न प्राप्त होकर, जन्मनि जन्मनि=जन्म-जन्म में, आसुरीम्=आसुरी, योनिम्=योनि को, आपन्नाः=प्राप्त होते हैं (फिर), ततः=उससे भी, अधमाम्=अति नीच, गतिम्=गति को, यान्ति=प्राप्त होते हैं (अर्थात् उपलब्ध योनि से नीचे की योनि में जाते हैं)।

भाव—आसुरी वृत्ति वाले व्यक्ति विवेकहीन होने के कारण उत्तरोत्तर उन्नत योनि को न प्राप्त होकर निम्न योनि को ही प्राप्त होते हैं।

टिप्पणी—**एव**—इस श्लोक में 'एव' पद देकर मानो श्रीकृष्ण पश्चात्ताप कर रहे हैं कि इस मनुष्य योनि को पाकर मेरी प्राप्ति का अवसर मिला था, ऐसे सुवर्ण अवसर को खोकर ये अज्ञानी लोग अधम अर्थात् निम्न गति को प्राप्त हो रहे हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ २१ ॥

कामः=काम, क्रोधः=क्रोध, तथा=तथा, लोभ;=लोभ, इदम् = यह, त्रिविधम्=तीन प्रकार के, नरकस्य=नरक के, द्वारम्=द्वार, आत्मनः=आत्मा का, नाशनम्=नाश करने वाले हैं, तस्मात्=इसलिए एतत्=इन, त्रयम्=तीनों को, त्यजेत्=त्याग देना चाहिए।

भाव—काम, क्रोध और लोभ ये तीनों सभी अनर्थों के मूल हैं। अतः इन्हें नरक का द्वार कहा गया है।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ।। २२ ।।

कौन्तेय=हे अर्जुन! एतैः = इन, त्रिभिः = तीनों, तमोद्वारैः = अन्धकारमय नरक के द्वारों से, विमुक्तः=मुक्त हुआ, नरः=पुरुष, आत्मनः=अपने, श्रेयः =कल्याण का, आचरति=आचरण करता है, ततः=इससे, पराम्=परम, गतिम् = गति को, याति=जाता है।

भाव—जो व्यक्ति काम, क्रोध और लोभ आदि विकारों से छूटा हुआ है वह परम-गति को प्राप्त करता है अर्थात् मुक्त हो जाता है।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।। २३ ।।

यः=जो पुरुष, शास्त्रविधिम्=शास्त्र की विधि को, उत्सृज्य=छोड़कर, कामकारतः=अपनी इच्छा से, वर्तते=व्यवहार करता है, सः=वह, न=न सिद्धिम्=सिद्धि को, न पराम्=न परम, गतिम्=गति को, न=न सुखम्=सुख को, अवाप्नोति=प्राप्त होता है।

भाव—शास्त्रोचित विधि से किये गये कार्य ही फलदायी होते हैं उसके विपरीत किये गये कार्यों से व्यक्ति की अधोगति ही होती है।

टिप्पणी—कामकारतः—शास्त्र के विधि-निषेध की ओर ध्यान न देकर, विवेकहीन बुद्धि से अपनी इच्छा से कार्य करने वाला।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।। २४ ।।

तस्मात् = इसलिए, ते=तेरे लिए, इह = इस, कार्याकार्यव्यवस्थितौ= कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की व्यवस्था में, शास्त्रम्=शास्त्र, प्रमाणम्=प्रमाण है, यह ज्ञात्वा=जानकर, शास्त्रविधानोक्तम्=शास्त्र विधि से नियत किए हुए, कर्म=कर्म को, कर्तुम=करने के लिए, अर्हसि=तू योग्य है।

भाव—इस श्लोक में शास्त्रानुकूल ही कार्यों को करने की प्रेरणा दी गई है। प्रस्तुत परिस्थिति में श्रीकृष्ण अर्जुन को यह स्पष्ट कर रहे हैं कि वह शास्त्रोचित कार्य ही कर रहा है।

पञ्चतन्त्र

'पञ्चतन्त्र' विश्व साहित्य को भारतीय साहित्य की महान् देन है। इसका सबसे प्राचीन संस्करण प्रायः तीसरी या चौथी शताब्दी में रचा हुआ माना जाता है। संसार की अनेक भाषाओं में प्राचीन काल में ही इसके अनुवाद तथा रूपान्तर हो गए थे। कहा जाता है कि दक्षिण के महिलारोप्य नामक नगर में अमरकीर्ति नामक राजा निवास करते थे। उनके पुत्र मूर्ख थे। उन मूर्ख पुत्रों को विद्वान् तथा नीति सम्पन्न बनाने के लिए उन्हें योग्य गुरु की आवश्यकता थी। उन्हें विष्णुशर्मा नामक योग्य गुरु मिले। विष्णुशर्मा लोक-व्यवहार तथा शास्त्र-ज्ञान दोनों विषयों के पण्डित थे। इसीलिए उन्होंने राजा के मूर्ख पुत्रों को थोड़े समय में ही व्यवहार-कुशल, सदाचार-सम्पन्न तथा नीतिज्ञ बना दिया। विष्णुशर्मा ने राजकुमारों को रोचक कथाओं के माध्यम से सरल ढंग से ज्ञान देने के लिए पञ्चतन्त्र की रचना की। पंचतन्त्र में पाँच तन्त्र (भाग) हैं। मित्रभेद, मित्रलाभ, सन्धि-विग्रह, लब्धप्रणाश तथा अपरीक्षितकारक। प्रत्येक तन्त्र में मुख्य कथा एक ही है, जिस को पुष्ट करने के लिए अनेक गौण कथाएँ कही गई हैं। पंचतन्त्र की भाषा सीधी-सादी है। कथानक का वर्णन गद्य में किया गया है पर उपदेशात्मक सूक्तियाँ पद्य में निहित हैं। ग्रन्थकार का उद्देश्य आरम्भ से ही सदाचार तथा नीति का शिक्षण रहा है।

अपरीक्षितकारकम्—यहाँ हम केवल अपरीक्षितकारक का ही विशेष वर्णन करेंगे।

बिना परीक्षा किए हुए अर्थात् बिना सोचे-विचारे कोई काम नहीं करना चाहिए इस तथ्य को प्रतिपादित करने वाली कथाओं का संग्रह होने के कारण ही पंचम-तन्त्र को अपरीक्षितकारक कहा जाता है। इसके प्रथम श्लोक में ही इस बात की घोषणा की गई है कि जो देखने में बुरा हो, जो बुरे रूप में जाना गया हो, जो बुरी तरह सुना गया हो तथा परीक्षा में जो उचित नहीं ठहरे उस काम को नहीं करना चाहिए। इसी श्लोक से सम्बन्धित कथाओं का संकलन होने के कारण इसे अपरीक्षित-कारक कहा जाता है।

क्षपणक-कथा

अथेदमारभ्यतेऽपरीक्षितकारकं नाम पञ्चमं तन्त्रं, यस्याऽयमादिमः श्लोकः—

कुदृष्टं कुपरिज्ञातं कुश्रुतं कुपरीक्षितम् ।
तन्नरेण न कर्त्तव्यं नापितेनाऽत्र यत्कृतम् ॥१॥

अथ=अब, इदम्=यह, अपरीक्षितकारकं नाम=अपरीक्षितकारक नामक, पञ्चमं तन्त्रम्=पांचवाँ तन्त्र, आरभ्यते=आरम्भ किया जाता है, यस्य=जिसका, अयम्=यह, आदिमः=पहला, श्लोकः=श्लोक है।

अत्र=यहाँ (इस प्रकरण में), नापितेन=नाई ने, कुदृष्टम्=बिना ठीक प्रकार से सोचे हुए, कुपरिज्ञातम्=बिना ठीक प्रकार से जाने हुए, कुश्रुतम्=बिना ठीक प्रकार से सुने हुए, कुपरीक्षितम्=बिना ठीक से विचार किए हुए, यत्=जैसा कार्य, कृतम्=किया, तत्=उस प्रकार का कार्य, नरेण=मनुष्य को, न कर्त्तव्यम्=नहीं करना चाहिए।

भाव—बिना सोचे समझे किए गए कार्य का कुपरिणाम प्रत्येक व्यक्ति को सहना पड़ता है। भारवि ने भी कहा है—'सहसा विदधीत न क्रियाम्' अर्थात् बिना सोचे कार्य नहीं करना चाहिए।

तथाऽनुश्रूयते—"अस्ति दाक्षिणात्ये जनपदे पाटलिपुत्रं नाम नगरम्। तत्र मणिभद्रो नाम श्रेष्ठी प्रतिवसति स्म। तस्य च धर्मार्थकाममोक्षकर्माणि कुर्वतो विधिवशाद्धनक्षयः सञ्जातः। ततो विभवक्षयादपमानपरम्परया परं विषादं गतः। अथाऽन्यदा रात्री सुप्तश्चिन्तितवान्—"अहो, धिगियं दरिद्रता।"

तत्=उस नाई का वृत्तान्त, यथा=जिस रूप में, अनुश्रूयते=परम्परा से सुना जाता है। अस्ति=है, दाक्षिणात्ये=दक्षिण के, जनपदे=देश में, पाटलिपुत्रं नाम=पाटलिपुत्र नामक नगर। तत्र=उस पाटलिपुत्र नगर में, मणिभद्रो नाम=मणिभद्र नाम का, श्रेष्ठी=धनी, प्रतिवसति स्म=रहता था, तस्य च=और उस मणिभद्र के, धर्मार्थकाममोक्षकर्माणि=धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष देने वाले कार्यों को, कुर्वतः=करते हुए भी, विधिवशात्=भाग्य दोष से, धनक्षयः=धन का नाश, सञ्जातः=हो गया, ततः=उसके बाद, विभवक्षयात्=वैभव के नष्ट हो जाने के कारण, अपमान-परम्परया=निरन्तर के अपमान से, परम=अत्यधिक, विषादम्=दुःख को, गतः=प्राप्त हुआ। अथ=उसके बाद, अन्यदा=किसी दिन, सुप्तः=सोते हुए, चिन्तितवान्=सोचने लगा, अहो धिगियं दरिद्रता=अहो! यह दरिद्रता अत्यधिक बुरी है।

उक्तं च—

शीलं शौचं क्षान्तिर्दाक्षिण्यं मधुरता कुले जन्म।
न विराजन्ति हि सर्वे, वित्तविहीनस्य पुरुषस्य ॥२॥

शीलम्=सदाचार, शौचम्=पवित्रता, क्षान्तिः=क्षमा, दाक्षिण्यम्=उदार अथवा शिष्ट व्यवहार, मधुरता=प्रिय भाषण, कुले जन्म=उत्तम कुल में जन्म लेना, सर्वे=सभी गुण, हि=निश्चित रूप से, वित्तविहीनस्य पुरुषस्य=धनरहित व्यक्ति को, न विराजन्ति=शोभा नहीं देते।

भाव—दया, उदारता आदि गुण निर्धन व्यक्ति के उत्कर्ष के कारण नहीं होते। 'दारिद्र्य दोषो गुणराशि नाशी' अर्थात् दरिद्रता का दोष सब गुणों को नष्ट कर देता है।

मानो वा दर्पो विज्ञानं विभ्रमः सुबुद्धिर्वा।
सर्वं प्रणश्यति समं, वित्तविहीनो यदा पुरुषः ॥३॥

मानः=सत्कार, दर्पः=अभिमान, विज्ञानम्=विशेष ज्ञान अथवा कलाओं का ज्ञान, विभ्रमः=समादर भाव, सुबुद्धिः=विवेक युक्त बुद्धि, यदा=जिस समय, पुरुषः=मनुष्य, वित्तविहीनः=धन रहित होता है, समम्=धन के साथ ही, सर्वम्=यह समस्त सत्कार आदि, प्रणश्यति=नष्ट हो जाते हैं।

भाव—जब कोई भी व्यक्ति निर्धन हो जाता है तो उसके मान, दर्प आदि सब गुण धन के साथ ही नष्ट हो जाते हैं।

प्रतिदिवसं याति लयं वसन्तवाताहतेव शिशिरश्रीः।
बुद्धिर्बुद्धिमतामपि कुटुम्बभरचिन्तया सततम् ॥४॥

बुद्धिमताम् अपि=बुद्धिमानों की भी, बुद्धिः=बुद्धि, सततम्=निरन्तर, कुटुम्बभरचिन्तया=कुटुम्ब के भरण-पोषण की चिन्ता से, वसन्तवाताहताः=वसन्त ऋतु के वायु से प्रताडित, शिशिरश्रीः=शिशिर ऋतु की शोभा की तरह, प्रतिदिवसम्=प्रतिदिन, लयम्=विनाश को, याति=प्राप्त होती है।

भाव—धनहीन व्यक्ति कितना भी बुद्धिमान् हो किन्तु परिवार के लिए दोनों समय की रोटी जुटाने की चिन्ता उसकी तीव्र बुद्धि को भी मन्द बना देती है।

नश्यति विपुलमतेरपि बुद्धिः पुरुषस्य मन्दविभवस्य।
घृतलवणतैलतण्डुलवस्त्रेन्धनचिन्तया सततम् ॥५॥

विपुलमतेरपि=प्रचुर बुद्धि वाले की भी, मन्दविभवस्य=अल्प वित्त वाले पुरुषस्य=मनुष्य की, बुद्धिः=बुद्धि, सततम्=निरन्तर, घृतलवणतैलतण्डुलवस्त्रेन्धन-चिन्तया=घी, नमक, तेल, चावल, वस्त्र आदि परिवार के भरण-पोषण योग्य आवश्यक वस्तुओं की चिन्ता से, नश्यति=नष्ट हो जाती है।

भाव—विवेकशील व्यक्ति का विवेक अर्थाभाव के कारण गृहस्थोपयोगी वस्तुओं नमक, तेल, लकड़ी आदि के संग्रह की चिन्ता में नष्ट हो जाता है। इन प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद ही व्यक्ति की बुद्धि अन्य दिशाओं में सोच सकती है।

गगनमिव नष्टतारं, शुष्कमिव सरः श्मशानमिव रौद्रम्।
प्रियदर्शनमपि रूक्षं, भवति गृहं धनविहीनस्य ॥ ६ ॥

प्रियदर्शनमपि = देखने में सुन्दर भी, धनहीनस्य = दरिद्र पुरुष का, गृहम् = घर, नष्टतारं गगनम् इव = नक्षत्र-रहित आकाश के समान, शुष्कम् = जल-रहित, सरः = जलाशय के समान, रौद्रम् = भयंकर, श्मशानमिव = प्रेतभूमि के समान, रुक्षं भवति = कान्ति-हीन होता है।

भाव—अर्थाभाव के कारण व्यक्ति अपने घर की साज-सज्जा नहीं कर पाता तथा अपना स्तर स्थिर नहीं रख पाता। साज-सज्जा के अभाव में घर शोभाहीन प्रतीत होता है।

न विभाव्यन्ते लघवो वित्तविहीनाः पुरोऽपि निवसन्तः।
सततं जातिविनष्टाः पयसामिव बुद्बुदा पयसि ॥ ७ ॥

वित्तविहीनाः = निर्धन व्यक्ति, लघवः = नगण्य, पुरः = (होते हैं) सामने, निवसन्तोऽपि = रहते हुए भी, पयसि = जल में, सततम् = निरन्तर, जातविनष्टाः = उत्पन्न होते ही विनष्ट होने वाले, पयसाम् = पानी के, वुद्बुदा इव = बुलबुलों के के समान, न विभाव्यन्ते = दिखाई नहीं देते।

भाव—जिस प्रकार पानी में उत्पन्न होने वाले बुलबुलों का कोई अस्तित्व नहीं होता। वे उत्पन्न होकर पुनः पानी में ही समाप्त हो जाते हैं। उसी प्रकार निर्धन व्यक्ति का समाज में कोई स्थान नहीं होता। समाज में अपना अस्तित्व वनाए रखने के लिए संघर्ष करता हुआ वह बुलबुले के समान ही नष्ट हो जाता है।

सुकुलं कुशलं, सुजनं विहाय, कुलकुशलशीलविकलेऽपि।
आढ्ये, कल्पतराविव नित्यं रज्यन्ति जननिवहाः ॥ ८ ॥

जननिवहाः = जनसमुदाय, सुकुलम् = अच्छे कुल में उत्पन्न, कुशलम् = चतुर, सुजनम् = सज्जन को, विहाय = छोड़कर, कुलकुशलशीलविकलेऽपि = कुल, चातुर्य, सदाचार आदि समस्त गुणों से रहित भी, आढ्ये = धनी व्यक्ति पर, कल्पतरौ इव = कल्पवृक्ष के समान, रज्यन्ति = अनुरक्त हो जाते हैं।

भाव—जिस प्रकार कल्पवृक्ष समस्त अभीष्ट पदार्थ देने में समर्थ है उसी प्रकार धनी पुरुष भी समस्त भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम होता है अतः सभी लोग धनी लोगों के प्रति प्रेम प्रदर्शित करते हैं और उन्हें प्रसन्न रखना अपना धर्म समझते हैं।

विफलमिह पूर्वसुकृतं, विद्यावन्तोऽपि कुलसमुद्भूताः।
यस्य यदा विभवः स्यात्तस्य तदा दासतां यान्ति ॥ ९ ॥

इह = इस संसार में, पूर्वसुकृतम् = पूर्वोपार्जित पुण्य, विफलम् भवति = व्यर्थ हो जाता है, यतो हि विद्यावन्तोऽपि = क्योंकि विद्वान् भी, कुलसमुद्भूताः = उच्चवंश में उत्पन्न होने वाले जन, यदा = जब, यस्य = जिस पुरुष के पास, विभवः = धन रहता है, तस्य = उस धनी पुरुष की, दासताम् = दासता को, यान्ति = स्वीकार कर लेते हैं।

भाव—इस संसार में सभी अर्थात् कुलीन विद्वान् तक भी धनवानों की दासता तक स्वीकार कर लेते हैं किन्तु निर्धन से मैत्री तक भी उन्हें इष्ट नहीं होती। निर्धन व्यक्ति का उन पर पहले किया हुआ भले ही कितना भी उपकार क्यों न हो, उसे वे भूल जाते हैं।

लघुरयमाह न लोकः कामं गर्जन्तमपि पतिं पयसाम् ॥
सर्वमलज्जाकरमिह, यद्यत्कुर्वन्ति परिपूर्णाः ॥ १० ॥

लोकः=जन-समूह, कामम्=अभीष्ट प्रकार से, गर्जन्तम्=गर्जते हुए, पयसां पतिं=सागर या बादल को, अयं लघुः=यह नीच है, न आह=नहीं कहता है, (क्योंकि) इह=इस संसार में, परिपूर्णाः=सम्पन्न व्यक्ति, यद्यत्कुर्वन्ति=जो कुछ भी करते हैं, सर्वं=वह सम्पूर्ण, अलज्जाकरम्=लज्जा रहित होता है।

भाव—सम्पन्न व्यक्ति अनुचित कार्य करने पर भी निन्दनीय नहीं समझा जाता। न ही उसके औचित्य की कोई सीमा है।

एवं संप्रधार्य भूयोऽप्यचिन्तयत्—"तदहमनशनं कृत्वा प्राणानुत्सृजामि। किमनेन नो व्यर्थजीवितव्यसनेन ?" एवं निश्चयं कृत्वा सुप्तः। अथ तस्य स्वप्ने पद्मनिधिः क्षपणकरूपो दर्शनं दत्त्वा प्रोवाच—"भोः श्रेष्ठिन्। मा त्वं वैराग्यं गच्छ। अहं पद्मनिधिस्तव पूर्वपुरुषोपार्जितः। तदनेनैवरूपेण प्रातस्त्वद्गृहमागमिष्यामि। तत्त्वयाऽहं लगुडप्रहारेण शिरसि ताडनीयः, येन कनकमयो भूत्वाऽक्षयो भवामि।"

एवम्=इस प्रकार, सम्प्रधार्य=विचार करके, भूयोऽपि=पुनः अचिन्तयत्=सोचने लगा, तत्=इस कारण से, अहम्=मैं मणिभद्र, अनशनम्=अनशन करके, प्राणान्=प्राणों को, उत्सृजामि=छोड़ दूंगा, नः=हमारे, अनेन=इस (धन रहित) व्यर्थजीवितव्यसनेन=व्यर्थ जीवन की चेष्टा करने से, किम्=क्या (प्रयोजन है ?) एवम्=इस प्रकार, निश्चयम्=निश्चय, कृत्वा=करके, सुप्तः=सो गया। अथ=इसके अनन्तर, तस्य=उस (मणिभद्र के) स्वप्ने=स्वप्न में, पद्मनिधिः=पद्म नामक निधि ने, क्षपणकरूपः=बौद्ध संन्यासी के रूप में, दर्शनम् दत्त्वा=प्रत्यक्ष होकर, प्रोवाच=कहा, भोःश्रेष्ठिन्=हे सेठ, त्वं वैराग्यम्=तुम वैराग्य को मा गच्छ=मत प्राप्त होवो, अहम्=मैं, पद्मनिधिः=पद्मनिधि, तव=तुम्हारे, पूर्वपुरुषोपार्जितः=पूर्वजों द्वारा उपार्जित हूँ, तत्=इस कारण, अनेनैवरूपेण=इसी रूप में (क्षपणक रूप में) प्रातः=प्रातः, त्वत्=तुम्हारे, गृहम्=घर, आगमिष्यामि=आऊँगा, तत्त्वया=तब तुम, अहम्=मुझे, लगुडप्रहारेण=लाठी के प्रहार से, शिरसि=सिर में, ताडनीयः=मारना, येन=जिससे, कनकमय.=सुवर्णमय, भूत्वा=होकर, अक्षयः=स्थिर, भवामि=हो जाऊँगा।

अथ प्रातः प्रबुद्धः सन् स्वप्नं स्मरंश्चिन्ताचक्रमारूढस्तिष्ठति—"अहो, सत्योऽयं स्वप्नः किं वा असत्यो भविष्यति, न ज्ञायते। अथवा नूनं मिथ्याऽनेन भाव्यम्। यतोऽहमहर्निशं केवलं वित्तमेव चिन्तयामि।

अथ=इसके अनन्तर (स्वप्न को देखने के पश्चात्), प्रातः प्रबुद्धः सन्=प्रातःकाल उठकर, स्वप्नं स्मरन्=स्वप्न को स्मरण करते हुए, चिन्ताचक्रमारूढ-

स्तिष्ठति=चिन्तित हो गया, अहो=आश्चर्य है, अयम्=यह, स्वप्नः=स्वप्न, सत्यः=सत्य है, वा=अथवा, असत्यः=असत्य, भविष्यति=होगा, न=नहीं, ज्ञायते=जानता। अथवा नूनं=अथवा निश्चित रूप से, मिथ्याऽनेन=इसे मिथ्या, भाव्यम्=होना चाहिए, यतोऽहम्=क्योंकि मैं, अहर्निशम्=दिन-रात, केवलम्=केवल, वित्तमेव=धन की ही, चिन्तयामि=चिन्ता में रहता हूँ।

उक्तं च—

व्याधितेन सशोकेन चिन्ताग्रस्तेन जन्तुना।
कामार्तेनाऽथ मत्तेन दृष्टः स्वप्नो निरर्थकः॥ ११॥

उक्तम् च=कहा भी है—

व्याधितेन=रोगी, सशोकेन=शोकाकुल, चिन्ताग्रस्तेन=चिन्ताकुल, अथ—और भी, कामार्तेन—काम-पीड़ित, मत्तेन—प्रमत्त, जन्तुना—प्राणी द्वारा, दृष्टः—देखा हुआ, स्वप्नः—स्वप्न, निरर्थकः—व्यर्थ, भवति—होता है।

भाव—यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि व्यक्ति जिस बात को सदा सोचता रहता है वही बात वह स्वप्न में देखता है। रोगी व्यक्ति सदा अपने रोग के विषय में सोचता है अतः स्वप्न भी उसी सम्बन्ध में देखता है। इसी प्रकार शोकग्रस्त, चिन्ताकुल, कामी एवं मत्त व्यक्ति की स्थिति होती है। यहाँ मणिभद्र अपने देखे हुए स्वप्न को निरर्थक इसलिए बता रहा है क्योंकि वह निर्धनता के शोक से ग्रस्त है और प्रति क्षण उसी की चिन्ता में रहने के कारण स्वप्न भी उसे उसी सम्बन्ध में आते हैं।

एतस्मिन्नन्तरे तस्य भार्यया कश्चिन्नापितः पादप्रक्षालनायाहूतः। अत्रान्तरे च यथानिर्दिष्टः क्षपणकः सहसा प्रादुर्बभूव। अथ स तमालोक्य प्रहृष्टमना यथासन्नकाष्ठदण्डेन तं शिरस्यताडयत्। सोऽपि सुवर्णमयो भूत्वा तत्क्षणात्भूमौ निपतितः। अथ तं स श्रेष्ठी निभृतं स्वगृहमध्ये कृत्वा नापितं सन्तोष्य प्रोवाच—"तदेतद्धनं, वस्त्राणि च मया दत्तानि गृहाण। भद्र! पुनः कस्यचिन्नाख्येयोऽयं वृत्तान्तः।"

एतस्मिन्नन्तरे—इस बीच में, तस्य—उसकी (सेठ की), भार्यया—पत्नी द्वारा, कश्चिन्नापितः—एक नाई, पादप्रक्षालनाय—चरण धोने के लिए, आहूतः—बुलाया गया, अत्रान्तरे—इसी बीच में, यथानिर्दिष्टः—जैसा स्वप्न में बताया था (वह), क्षपणकः—बौद्ध संन्यासी, सहसा—अचानक, प्रादुर्बभूव—दिखाई पड़ा। अथ—उसके अनन्तर, सः—उस सेठ ने, तमालोक्य—उस संन्यासी को देखकर, प्रहृष्टमना—प्रसन्न मन से, यथासन्नकाष्ठदण्डेन—निकट रखी हुई लाठी से, तम्—उस संन्यासी के, शिरस्यताडयत्—सिर पर मारा, सोऽपि—वह संन्यासी भी, सुवर्णमयो भूत्वा—सुवर्णमय होकर, तत्क्षणात्—उसी समय, भूमौ—भूमि पर, निपतितः—गिर पड़ा, अथ—तदनन्तर, स श्रेष्ठी—उस सेठ ने, तम्—उसको, (सुवर्णमय क्षपणक को) निभृतम्—गुप्त रूप से, स्वगृहमध्ये—अपने घर में, कृत्वा—करके (छिपा कर), नापितं सन्तोष्य—नाई को (धनादि से) सन्तुष्ट कर, प्रोवाच—बोला, भद्र—भद्र! मया दत्तानि—मेरे द्वारा दिए गए, तदेतद् धनं—इस धन, वस्त्राणि च—और वस्त्रों को, गृहाण—ले लो,

पुनः—फिर, अयं वृत्तान्तः—यह वृतान्त, कस्यचिन्नाख्येयः—किसी व्यक्ति को नहीं कहना।

नापितोऽपि स्वगृहं गत्वा व्यचिन्तयत्—"नूनमेते सर्वेऽपि नग्नकाः शिरसि ताडिताः काञ्चनमया भवन्ति। तदहमपि प्रातः प्रभूतानाहूय लगुडैः शिरसि हन्मि, येन प्रभूतं हाटकं मे भवति।" एवं चिन्तयतो महता कष्टेन निशा व्यतिचक्राम।

नापितोऽपि—नाई ने भी, स्वगृहम्—अपने घर, गत्वा—जाकर, व्यचिन्तयत्—सोचा, नूनम्—निश्चित रूप से, एते—ये, नग्नकाः—नागा साधु (बौद्ध भिक्षु), शिरसि—सिर पर, ताडिताः—दण्ड-प्रहार के द्वारा, काञ्चनमया—सुवर्णमय, भवन्ति—हो जाते हैं, तदहमपि—तो मैं भी, प्रातः—प्रातःकाल, प्रभूतानाहूय—वहुतों को बुलाकर (अनेक बौद्ध संन्यासियों को बुलाकर) लगुडैः—लाठी से, शिरसि—सिर पर, हन्मि—मारूँगा, येन—जिससे, प्रभूतम्—बहुत सा, हाटकम्—सुवर्ण, मे—मेरे पास, भवति—हो जाएगा। एवम्—इस प्रकार, चिन्तयतः—सोचते हुए की, महता कष्टेन—अत्यधिक कष्ट के साथ, निशा—रात्रि, व्यतिचक्राम—व्यतीत हुई।

अथ प्रभातेऽभ्युत्थाय वृहल्लगुडमेकं प्रगुणीकृत्य, क्षपणकविहारं गत्वा जिनेन्द्रस्य प्रदक्षिणत्रयं विधाय, जानुभ्यामवनिं गत्वा वक्त्रद्वारन्यस्तोत्तरीयाञ्चलस्तारस्वरेणेमं श्लोकमपठत्—

अथ—इसके अनन्तर, प्रभाते—प्रातःकाल, अभ्युत्थाय—उठकर, वृहल्लगुडमेकम्—वहुत बड़ी एक लाठी, प्रगुणीकृत्य—तैयार करके, क्षपणकविहारम्—बौद्ध भिक्षुओं के मठ में, गत्वा—जाकर, जिनेन्द्रस्य—जिन भगवान् की, प्रदक्षिणत्रयम्—तीन परिक्रमाएँ, विधाय—करके, जानुभ्यामवनिं गत्वा—घुटनों के वल भूमि पर बैठकर, वक्त्रद्वारन्यस्तोत्तरीयाञ्चलः—उत्तरीय से मुख ढककर, तारस्वरेण—उच्च स्वर से, श्लोकमपठत्—श्लोक पढ़ा—

जयन्ति ते जिना येषां केवलज्ञानशालिनाम्।
आजन्मनः स्मरोत्पत्तौ मानसेनोषरायितम्॥ १२॥

केवलज्ञानशालिनाम्—केवल ज्ञान परायण, येषाम्—जिन बौद्ध भिक्षुओं का, आजन्मनः—जन्म से ही, स्मरोत्पत्तौ—कामोत्पत्ति के सम्बन्ध में, मानसेन—चित्त, ऊपरायितम्—ऊसर भूमि के समान आचरण करता है, ते—वे काम-रहित, जिनाः—जिन, जयन्ति—विजयी होते हैं।

भाव—बौद्ध भिक्षु जीवन पर्यन्त ज्ञानपरायण रहते हैं और सांसारिक विषय-वासनाएँ उनके चित्त में उसी प्रकार उत्पन्न ही नहीं होतीं जैसे ऊसर भूमि में प्रयत्न से भी उपज नहीं होती।

अन्यच्च—

सा जिव्हा या जिनं स्तौति तच्चित्तं यज्जिने रतम्।
तावेव च करौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ॥ १३॥

अन्यच्च—और भी—

सा जिह्वा—वही जिह्वा है, (प्रशंसनीय हैं), या जिनम्—जो जिन की, स्तौति—स्तुति करती है, तच्चित्तम्—वही मन है (प्रशंसनीय है), जिने रतम्—जिन में अनुरक्त है, च—और, करौ—हाथ, तावेव—वही, श्लाघ्यौ—प्रशंसनीय हैं, यौ—जो तत्पूजाकरौ—उसकी पूजा करने वाले (जिन की) करौ—हाथ हैं।

भाव—जिन की स्तुति, जिन में अनुराग एवं उसकी पूजा प्रशंसनीय होती है।

तथा च—

ध्यानव्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं,
पश्यानङ्गशरातुरं जनमिमं त्राताऽपि नो रक्षसि।
मिथ्याकारुणिकोऽसि निर्घृणतरस्त्वत्तः कुतोऽन्यः पुमान्,
सेर्ष्यं मारवधूभिरित्यभिहितो बौद्धो जिनः पातु वः॥ १४॥

तथा च—और भी—

ध्यानव्याजमुपेत्य—झूठी समाधि का बहाना बनाकर, काम्—किस (प्रेयसी का), चिन्तयसि—ध्यान कर रहे हो, क्षणम्—एक क्षण के लिए, चक्षुः—नेत्र को उन्मील्य—खोलकर, अनङ्गशरातुरम्—कामदेव के बाणों से आहत, इमं जनम्—इस (सामने स्थित) जन को, पश्य—देखो, त्राताऽपि—रक्षक होकर भी, नो रक्षसि—रक्षा नहीं करते हो, मिथ्या—झूठ ही, कारुणिकोऽसि—दयालु हो, त्वत्तः—तुमसे, अन्यः—अतिरिक्त, निर्घृणतरः—अधिक निर्दयी, पुमान्—पुरुष, कुतः—कहाँ (मिलेगा), मारवधूभिः—अप्सराओं द्वारा, सेर्ष्यम्—ईर्ष्या के साथ, इत्यभिहितः—इस प्रकार कहा गया, बौद्धो जिनः—बौद्ध भिक्षु, वः—आप लोगों की, पातु—रक्षा करे।

भाव—बौद्ध भिक्षु का अपने मन पर पूर्ण नियन्त्रण होता है और वह अप्सराओं को देखकर तथा उनकी प्रार्थना पर भी विचलित नहीं होता और विषय-वासनाओं से दूर रहता है।

एवं संस्तुत्य, ततः प्रधानक्षपणकमासाद्य क्षितिनिहितजानुचरणः "नमोस्तु, वन्दे" इत्युच्चार्य, लब्धधर्मवृद्ध्याशीर्वादः मुखमालिकाऽनुग्रहलब्धव्रतादेश उत्तरीयनिबद्धग्रन्थिः सप्रश्रयमिदमाह—"भगवन्! अद्य विहरणक्रिया समस्तमुनिसमेतेनास्मद्गृहे कर्त्तव्या।"

ततः—तदनन्तर, एवम्—इस प्रकार, संस्तुत्य—स्तुति करके, प्रधानक्षपणकम्—प्रमुख भिक्षु के पास, आसाद्य—जाकर, क्षितिनिहितजानुचरणः—भूमि पर घुटने टेक कर, नमोऽस्तु—नमस्कार हो, वन्दे—वन्दना करता हूँ, इत्युच्चार्य—ऐसा उच्चारण करके, लब्धधर्मवृद्ध्याशीर्वादः—धर्मवृद्धि का आशीर्वाद प्राप्त करके (तथा), मुखमालिकाऽनुग्रहलब्धव्रतादेशः—भिक्षु द्वारा प्रदत्त अनुग्रह रूपी कण्ठी से व्रत का आदेश प्राप्त करके, उत्तरीयनिबद्धग्रन्थिः—दुपट्टे में कण्ठी को बाँधकर, सप्रश्रयम्—अत्यन्त विनीत भाव से (नाई ने), इदम्—यह, आह—कहा, भगवन्—भगवन्!

अद्य—आज, समस्तमुनिसमेतेन—सभी भिक्षुओं के साथ, अस्मद् गृहे—हमारे घर, विहरणक्रिया—भिक्षाटन (भोजनार्थ भ्रमण), कर्त्तव्या—करना चाहिए।

स आह—"भोः श्रावक ! धर्मज्ञोऽपि किमेवं वदसि, किं वयं ब्राह्मणसमानाः यत आमत्रणं करोषि ? वयं सदैव तत्कालपरिचर्यया भ्रमन्तो भक्ति-भाजं श्रावक-मवलोक्य तस्य गृहे गच्छामः। तेन कृच्छ्रादभ्यर्थितास्तद्गृहे प्राणधारणमात्रामशनक्रियां कुर्मः। तद्गम्यताम्, नैवं भूयोऽपि वाच्यम्।"

स आह—उस भिक्षु ने कहा, भोः श्रावक—भो जिनानुरागी ! धर्मज्ञोऽपि—धर्म-ज्ञाता होते हुए भी, किमेवं वदसि—यह क्या कह रहे हो ? किम्—क्या, वयम्—हम, ब्राह्मण-समानाः—ब्राह्मण के समान हैं, यतः—जो कि, आमन्त्रणं करोषि—तुम निमन्त्रण दे रहे हो ?, वयम्—हम लोग, तत्कालपरिचर्यया—भिक्षाटन का समय उपस्थित होने पर, भ्रमन्तः—घूमते हुए, भक्तिभाजम्—श्रद्धालु, श्रावकम्—श्रावक भक्त को, अवलोक्य—देखकर, तस्य—उसके, गृहे—घर में, गच्छामः—जाते हैं, तेन—उसके, कृच्छ्रादभ्यर्थितास्तद्गृहे—बहुत आग्रह करने पर उसके घर, प्राणधारणमात्रा-मशनाक्रियां कुर्मः—केवल जीवन निर्वाह मात्र के लिए अपेक्षित भोजन करते हैं, तद्गम्यताम्—अतः तुम चले जाओ, एवम्—इस प्रकार, भूयः—पुनः (भविष्य में), न—नहीं, वाच्यम्—कहना।

तच्छ्रुत्वा, नापित आह—"भगवन् ! वेद्म्यहं युष्मद्धर्मम्। परं भवतो बहुश्रावका आह्वयन्ति। साम्प्रतं पुनः पुस्तकाच्छादनयोग्यानि कर्पटानि बहुमूल्यानि प्रगुणीकृतानि। तथा पुस्तकानां लेखनार्थं लेखकानां च वित्तं सञ्चितमास्ते। तत्सर्वथा कालोचितं कार्यम्।"

तच्छ्रुत्वा—उसको सुनकर (प्रमुख भिक्षु के वचन सुनकर), नापित आह—नाई ने कहा, भगवन्—भगवन् ! युष्मद् धर्मम्—आपके धर्म को, वेद्म्यहम्—मैं जानता हूँ, परम्—किन्तु, भवतः—आपको, बहुश्रावकाः—अनेक श्रावक, आह्वयन्ति—बुलाते हैं, साम्प्रतम्—इस समय, पुस्तकाच्छादनयोग्यानि—पुस्तकों को बांधने योग्य, बहुमूल्यानि—बहुमूल्य, कर्पटानि—वस्त्रों का, प्रगुणीकृतानि—सञ्चय कर रखा है, तथा—और, पुस्तकानाम्—ग्रन्थों को, लेखनार्थम्—लिखवाने के हेतु, लेखकानाम्—लेखकों के लिए (विद्वानों को पारिश्रमिक के रूप में देने के लिए) वित्तम्—धन, सञ्चितमास्ते—एकत्रित कर रखा है, तत्सर्वथा—तब सर्वथा, कालो-चितम्—समयानुकूल, कार्यम्—किया जाना चाहिए। (अर्थात् संभव है मैं पुनः इन सामानों को एकत्र न कर सकूँ अतः समय को देखते हुए आपको मेरा निमन्त्रण स्वीकार करना चाहिए)।

ततो नापितोऽपि स्वगृहं गतः। तत्र च गत्वा खदिरमयं लगुडं सज्जीकृत्य कपाट-युगलं द्वारि समाधाय सार्द्धप्रहरैकसमये भूयोऽपि विहारद्वारमाश्रित्य सर्वान्क्रमेण निष्क्रामतो गुरुप्रार्थनया स्वगृहमानयत्। तेऽपि सर्वे कर्पटवित्तलोभेन भक्तियुक्तानपि

परिचितश्रावकान् परित्यज्य प्रहृष्टमनसस्तस्य पृष्ठतो ययुः। अथवा साध्विदमुच्यते—

ततः—तदनन्तर, नापितोऽपि—नाई भी, स्वगृहम्—अपने घर, गतः—चला गया, तत्र च—और वहाँ (घर) गत्वा—जाकर, खदिरमयम्—खदिर-काष्ठ की, लगुडम्—लाठी, सज्जीकृत्य—तैयार करके, कपाटयुगलम् द्वारि—द्वार के दोनों पल्लों को, समाधाय—वन्द करके, सार्द्धप्रहरैकसमये—डेढ़ पहर का समय होने पर, भूयोऽपि—पुनः, विहारद्वारमाश्रित्य—मठ के द्वार पर पहुँचकर, क्रमेण—क्रमशः, निष्क्रामतः—निकलने वाले, सर्वान्—सब भिक्षुओं को, गुरुप्रार्थनया—अत्यधिक अनुनय-विनय करके, स्वगृहमानयत्—अपने घर ले आया, तेऽपि सर्वे—वे सब भी, कर्पटवित्तलोभेन —वस्त्रद्रव्यादि के लोभ से, भक्तियुक्तानपि—भक्ति युक्त भी, परिचितश्रावकान्—परिचित श्रावकों को, परित्यज्य—छोड़कर, प्रहृष्टमनसः—प्रसन्न मन होते हुए, तस्य—उस नापित के, पृष्ठतः—पीछे, ययुः—चल पड़े, अथवा साध्विदमुच्यते—यह ठीक ही कहा है—

एकाकी गृहसन्त्यक्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।
सोऽपि संवाह्यते लोके तृष्णया पश्य कौतुकम् ॥१५॥

कौतुकं पश्य—क्या आश्चर्य का विषय है कि, एकाकी—अकेला, गृहसन्त्यक्तः—घर को छोड़कर, पाणिपात्रः—कर को ही पात्र समझने वाला, दिगम्बरः—नग्न (भिक्षु भी), लोके—संसार में, तृष्णया—तृष्णा से, संवाह्यते—परिचालित हो जाता है।

भाव—नितान्त विरक्त व्यक्ति भी कभी-कभी तृष्णा के जाल में फंस जाता है।

जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दंता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
चक्षुः श्रोत्रे च जीर्येते, तृष्णैका तरुणायते ॥१६॥

जीर्यतः—वृद्धावस्था को प्राप्त हुए व्यक्ति के, केशाः—बाल, जीर्यन्ते—पक जाते हैं, दन्ताः—दांत, जीर्यन्ति—जीर्ण हो जाते हैं, (जीर्ण होकर गिर जाते हैं), चक्षुः श्रोत्रे च—नेत्र और कान, जीर्येते—जीर्ण हो जाते हैं, तृष्णैका—एकमात्र तृष्णा, तरुणायते—तरुण रहती है।

भाव—सभी इन्द्रियों के शिथिल हो जाने के पश्चात् भी मनुष्य की तृष्णा कम नहीं होती है। जब व्यक्ति वृद्ध होता है तो उसके बाल सफेद हो जाते हैं, दांत गिर जाते हैं, नेत्र देखने में असमर्थ हो जाते हैं, कान सुनने में असमर्थ हो जाते हैं, किन्तु व्यक्ति की लालसा समाप्त नहीं होती। दांतों के न होने पर भी वह जिह्वा का स्वाद नहीं छोड़ पाता। इस आयु में भी वह काम वासनाओं में एवं भोग ऐश्वर्य में लिप्त रहता है। उसकी तृष्णा अर्थात् कुछ न कुछ पाने की लालसा अर्थात् मोह सदा बना रहता है। यह तृष्णा कभी समाप्त नहीं होती। कहा भी है—तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः—अर्थात् हम ही जीर्ण हो गए हैं तृष्णा जीर्ण नहीं हुई।

ततः परं गृहमध्ये तान् प्रवेश्य, द्वारं निभृतं पिधाय, लगुडप्रहारैः शिरस्यताडयत्। तेऽपि ताड्यमाना एके मृताः, अन्ये भिन्नमस्तकाः फूत्कर्तुमुपचक्रमिरे। अत्रान्तरे तमाक्रन्दमाकर्ण्य कोटरक्षपालेनाऽभिहितम्—"भोः भोः! किमयं कोलाहलो नगरमध्ये ? तद्गम्यताम्।"

ततः परम्—उसके बाद, (भिक्षुओं के आ जाने के बाद) गृहमध्ये—घर के भीतर, तान्—उन भिक्षुओं को, प्रवेश्य—प्रविष्ट कराके, द्वारम्—द्वार को, निभृतम्—गुप्त रूप से, पिधाय—बन्द करके, लगुडप्रहारैः—दण्ड-प्रहार से, शिरसि—सिर पर, अताडयत्—मारा। तेऽपि—वे भी (बौद्ध भिक्षु)। ताड्यमानाः—मारे जाते हुए, एके मृताः—कुछ तो मर गए, अन्ये—अवशिष्ट भिक्षु, भिन्नमस्तकाः—सिर फूटने से, फूत्कर्तुमुपचक्रमिरे—चिल्लाने लगे। अत्रान्तरे—इस बीच में, तमाक्रन्दम्—उस कोलाहल को, आकर्ण्य—सुनकर, कोटरक्षपालेन—दुर्गरक्षक ने, (अपने सेवकों से) अभिहितम्—कहा, भोः भोः—अरे ओ, नगरमध्ये—नगर में, किमयम्—यह कैसा, कोलाहलः—कोलाहल है। तद्—तो, गम्यताम्—जाओ (अर्थात् जाकर देखो)।

ते च सर्वे तदादेशकारिणस्तत्सहिता वेगात्तद्गृहं गता यावत् पश्यन्ति तावद्रुधिराप्लावित देहाः पलायमाना नग्नका दृष्टाः। पृष्टाश्च भोः किमेतत् ? ते प्रोचुर्यथाऽवस्थितं नापितवृत्तम्।

ते च सर्वे—और वे सब, तदादेशकारिणः—उस दुर्गपाल के आज्ञापालक (सिपाही), तत्सहिताः—उस दुर्गपाल के साथ, वेगात्तद्गृहम्—अति तीव्र गति से उसके घर, गताः—पहुँच गए, यावत् पश्यन्ति—जब तक देखते हैं, तावद्रुधिराप्लावितदेहाः—तब तक रक्त से भरे हुए शरीर वाले, पलायमानाः—इधर-उधर भागते हुए, नग्नकाः—बौद्ध भिक्षुओं को, दृष्टाः—देखा, पृष्टाश्च—और पूछा, भोः—अरे, किमेतत्—यह सब क्या (है)? ते—उन बौद्ध भिक्षुओं ने, नापितवृत्तम्—नाई का वृत्तान्त, यथाऽवस्थितम्—जैसे घटित हुआ था, प्रोचुः—कह सुनाया।

तैरपि स नापितो बद्धो हतशेषैः सह धर्माधिष्ठानं नीतः। तैर्नापितः पृष्टः—"भोः किमेतद्भवता कुकृत्यमनुष्ठितम् ?" स आह—'किं करोमि। मया श्रेष्ठिमणिभद्रगृहे दृष्टः एवं विधो व्यतिकरः।' सोऽपि सर्वं मणिभद्रवृत्तान्तं यथादृष्टमकथयत्।

तैरपि—उन सिपाहियों ने भी, नापितो बद्धः—नाई को बाँधकर, हतशेषैः सह—मृत्यु से अवशिष्ट (क्षपणकों के साथ), धर्माधिष्ठानम्—न्यायालय में, नीतः—उपस्थित किया। तैः—उन न्यायाधीशों ने, नापितः—नाई से, पृष्टः—पूछा, भोः—अरे, भवता—आपने, किमेतद्—यह क्या, कुकृत्यमनुष्ठितम्—कुकर्म कर दिया ? स आह—वह नाई बोला, किं—क्या, करोमि—करता, मया—मैंने, श्रेष्ठिमणिभद्रगृहे—सेठ मणिभद्र के घर में, एवंविधः—इस प्रकार का, व्यतिकरः—उपक्रम, दृष्टः—देखा था, सोऽपि—उस नाई ने भी, मणिभद्रवृत्तान्तम्—सेठ मणिभद्र के घर घटित वृत्तान्त, सर्वम्—सारा, यथादृष्टम्—जैसा देखा था, अकथयत्—कह दिया।

ततः श्रेष्ठिनमाहूय, ते भणितवन्तः—"भोः श्रेष्ठिन्! किं त्वया कश्चित्क्षपणको व्यापादितः?" ततस्तेनाऽपि सर्वः क्षपणकवृत्तान्तस्तेषां निवेदितः। अथ तैरभिहितम्—"अहो, शूलमारोप्यतामसौ दुष्टात्मा कुपरीक्षितकारी नापितः।"

ततः—तदनन्तर, श्रेष्ठिनमाहूय—सेठ को बुलाकर, ते—उन न्यायाधीशों ने, भणितवन्तः—कहा, भोः—अरे, श्रेष्ठिन्—सेठ, किम्—क्या, त्वया—आपने, कश्चित्क्षपणकः—किसी बौद्ध भिक्षु को, व्यापादितः—मारा है? ततः—तदनन्तर, तेनाऽपि—उस सेठ मणिभद्र ने भी, सर्वः—समस्त, क्षपणकवृत्तान्तः—बौद्ध भिक्षु सम्बन्धी वृत्तान्त, तेषाम्—उन न्यायाधीशों से, निवेदितः—कह दिया, अथ—इसके अनन्तर, तैरभिहितम्—उन न्यायाधीशों ने कहा, असौ—इस, दुष्टात्मा—दुष्टात्मा, कुपरीक्षितकारी—विना सोचे समझे कार्य करने वाले, नापितः—नाई को, शूलमारोप्यताम्—शूली पर चढ़ा दो।

तथाऽनुष्ठिते तैरभिहितम्—
कुदृष्टं कुपरिज्ञातं कुश्रुतं कुपरीक्षितम्।
तन्नरेण न कर्तव्यं नापितेनाऽत्र यत्कृतम्॥१७॥

तथाऽनुष्ठिते—वैसा करने पर, (नापित को शूली पर चढ़ाने के उपरान्त) तैरभिहितम्—उन न्यायाधीशों ने कहा—

कुदृष्टम्—विना अच्छी प्रकार देखे, कुपरिज्ञातम्—बिना अच्छी प्रकार से जाने हुए, कुश्रुतम्—बिना अच्छी प्रकार से सुने हुए, कुपरीक्षितम्—बिना अच्छी प्रकार से परीक्षा किए हुए, तन्नरेण—कोई कार्य मनुष्य को, न कर्त्तव्यम्—नहीं करना चाहिए, नापितेन—नाई ने, अत्र—यहाँ, (उपर्युक्त प्रकरण में) यत्कृतम्—जिस प्रकार किया।

अथवा साध्विदमुच्यते—

अपरीक्ष्य न कर्त्तव्यं कर्त्तव्यं सुपरीक्षितम्।
पश्चाद्भवति सन्तापो ब्राह्मण्या नकुले यथा॥१८॥

मणिभद्र आह—"कथमेतत्?"

ते धर्माधिकारिणः प्रोचुः—

अथवा साध्विदमुच्यते—अथवा ठीक ही कहा गया है—

अपरीक्ष्य—विना अच्छी तरह परीक्षा किए हुए, न कर्त्तव्यम्—कार्य को नहीं करना चाहिए, सुपरीक्षितम्—ठीक प्रकार से परीक्षा करके ही, कर्त्तव्यम्—कार्य को करना चाहिए, पश्चात्—बाद में, (अर्थात् बिना सोचे-समझे कार्य करने पर) सन्तापः—पश्चात्ताप, भवति—होता है, यथा—जिस प्रकार, ब्राह्मण्या—ब्राह्मणी को, नकुले—नकुल के मर जाने पर करना पड़ा था।

मणिभद्र आह—मणिभद्र ने कहा, कथम् एतत्—कैसे?

ते—वे, धर्माधिकारणिः—न्यायाधीश, प्रोचुः—बोले—

ब्राह्मणीनकुल-कथा

कस्मिश्चिदधिष्ठाने देवशर्मा नाम ब्रह्मणः प्रतिवसति स्म। तस्य भार्या प्रसूता सुतमजनयत्। तस्मिन्नेव दिने नकुली नकुलं प्रसूय मृता। अथ सा सुतवत्सला दारकवत्तमपि नकुलं स्तन्यदानाऽभ्यङ्गमर्दनादिभिः पुपोष। परं तस्य न विश्वसति। अपत्यस्नेहस्य सर्वस्नेहातिरिक्ततया सततमेवमाशङ्कते यत्—कदाचिदेष स्वजातिदोषवशादस्य दारकस्य विरुद्धमाचरिष्यति इति।

कस्मिश्चित्—किसी, अधिष्ठाने—स्थान पर, देवशर्मा—देवशर्मा नामक, ब्राह्मणः—ब्राह्मण, प्रतिवसति स्म—रहता था। तस्य—उसकी, प्रसूता—गर्भवती, भार्या—पत्नी ने, सुतमजनयत्—पुत्र को उत्पन्न किया। तस्मिन्नेव दिने—उसी दिन, नकुली—एक नेवली, नकुलम्—नेवले को, प्रसूय—उत्पन्न करके, मृता—मर गई। अथ—इसके अनन्तर, सा—उस ब्राह्मणी ने सुतवत्सला—पुत्र-स्नेह के वशीभूत होकर, दारकवत्—पुत्र की तरह, तमपि नकुलं—उस नेवले का भी, स्तन्यदानाभ्यङ्गमर्दनादिभिः—स्तनपान, उबटन, तेल मालिश आदि से, पुपोष—पालन किया। परम्—किन्तु, तस्य—उस नकुल का, न विश्वसति—विश्वास नहीं करती थी। अपत्यस्नेहस्य—पुत्र के प्रति स्नेह के, सर्वस्नेहातिरिक्त-तया—सब स्नेहों से सर्वोपरि होने के कारण, सततमेव—निरन्तर ही, आशङ्कते—सन्देह करती थी, यत्—कि, कदाचिदेष—कभी यह, स्वजातिदोषवशादस्य—अपने जातिदोष के कारण, (अर्थात् हिंसक जाति का होने के कारण) दारकस्य—मेरे पुत्र का, विरुद्धम्—अनिष्ट, आचरिष्यति—कर सकता है।

उक्तं च—

कुपुत्रोऽपि भवेत्पुंसां हृदयानन्दकारकः।
दुर्विनीतः, कुरूपोऽपि, मूर्खोऽपि, व्यसनी, खलः ॥१८॥

उक्तं च—कहा भी है—

दुर्विनीतः—दुर्विनीत, कुरूपः—असुन्दर, मूर्खः—अशिक्षित, खलः—दुष्ट, व्यसनी—दुराचारी, कुपुत्रोऽपि—दुष्ट पुत्र भी, पुंसाम्—लोगों के, हृदयानन्द-कारकः—हृदय को आनन्दित करने वाला, भवति—होता है।

भाव—संसार में अपनी सन्तान चाहे कितनी ही दुष्ट क्यों न हो किन्तु वह अच्छी लगती है।

एवं च भाषते लोकश्चन्दनं किल शीतलम्।
पुत्रगात्रस्य संस्पर्शश्चन्दनादतिरिच्यते ॥१९॥

लोकः—जनसमूह, एवम्—इस प्रकार, भाषते—कहता है, चन्दनम्—चन्दन, किल—निश्चित रूप से, शीतलम्—शीतल, भवति—होता है, पुत्रगात्रस्य—पुत्र के शरीर का, संस्पर्शः—स्पर्श, चन्दनादतिरिच्यते—चन्दन से भी अधिक शीतल होता है।

भाव—संसार में सर्वाधिक शीतलता पुत्र-स्पर्श से प्राप्त होती हैं।

सौहृस्य न वाञ्छन्ति जनकस्य हितस्य च।
लोकाः प्रपालकस्याऽपि यथा पुत्रस्य बन्धनम् ॥२०॥

लोकाः—लोग, यथा—जिस प्रकार, पुत्रस्य—पुत्र के, बन्धनम्—स्नेह बन्धन को, वाञ्छन्ति—चाहते हैं, तथा—उस प्रकार, सौहृदस्य—मित्र के, जनकस्य—पिता के, हितस्य—हितकारी पुरुष के, प्रपालकस्याऽपि च—और पालन-पोषण करने वाले के भी, न—नहीं, [बन्धन को नहीं चाहते]।

भाव—पुत्र द्वारा दिए गए समस्त दुःख कष्ट आदि सभी माता-पिता प्रसन्नता से सहन कर लेते हैं अन्य किसी निकटस्थ भी व्यक्ति द्वारा दिया गया कोई भी बन्धन व्यक्ति के लिए असह्य होता है।

अथ सा कदाचिच्छय्यां पुत्रं शाययित्व जलकुम्भमादाय पतिमुवाच—"ब्राह्मण ! जलार्थमहं तडागे यास्यामि। त्वया पुत्रोऽयं नकुलाद्रक्षणीयः।"

अथ—इसके अनन्तर, कदाचित्—कभी, (एक दिन,) सा—वह ब्राह्मणी, पुत्रम्—पुत्र को, शय्यायाम्—शय्या पर, शाययित्वा—सुलाकर, जलकुम्भमादाय—जल के कुम्भ को लेकर, पतिमुवाच—पति से बोली, ब्राह्मण—ब्राह्मण, अहम्—मैं, जलार्थम्-जल भरने के लिए, तडागे—तालाब पर, यास्यामि—जाऊँगी, त्वया—तुम, नकुलात्—नेवले से, पुत्रोऽयम्—इस बच्चे की, रक्षणीयः—रक्षा करना।

शून्यं गृहमुक्त्वा भिक्षार्थं क्वचिन्निर्गतः। अत्रान्तरे दैववशात् कृष्णसर्पो बिलान्निष्क्रान्तः।

अथ तस्यां गतायां, पृष्ठे ब्राह्मणोऽपि। नकुलोऽपि तं स्वभाववैरिणं मत्वा, भ्रात् रक्षणार्थं सर्पेण सह युद्ध्वा, सर्पं खण्डशः कृतवान्

अथ—इसके बाद, तस्याम्—उस ब्राह्मणी के, गतायाम्—चले जाने पर, पृष्ठे—पीछे, ब्राह्मणोऽपि—ब्राह्मण भी, शून्यं गृहं—घर को अकेला, मुक्त्वा—छोड़कर, भिक्षार्थम्—भिक्षा के लिए, क्वचित्—कहीं निर्गतः—निकल गया, अत्रान्तरे—इसी बीच, दैववशात्—दुर्भाग्यवश, कृष्णसर्पः—काला सर्प, विलान्निष्क्रान्तः—बिल से निकला, नकुलोऽपि—नकुल ने भी, तम्—उसे, स्वभाववैरिणम्—स्वभाव से ही वैर करने वाला, मत्वा—मानकर, भ्रातुः—भाई की, रक्षणार्थम्—रक्षा के लिए, सर्पेण सह—सांप के साथ, युद्ध्वा—युद्ध करके, सर्पं—सर्प के, खण्डशः—टुकड़े, कृतवान—कर दिए।

ततो रुधिराप्लावितवदनः सानन्दं स्वव्यापारप्रकाशनार्थं मातुः संमुखो गतः। माताऽपि तं रुधिरक्लिन्नमुखमालोक्य, शङ्कितचित्ता "नूनमनेन दुरात्तना दारको भक्षितः" इति विचिन्त्य कोपात्तस्योपरि तं जलकुम्भं चिक्षेप।

ततः—तदनन्तर, रुधिराप्लावितवदनः—खून से आर्द्रमुख वाला, सानन्दम्—आनन्द पूर्वक, स्वव्यापारप्रकाशनार्थम्—अपना कार्य प्रकाशित करने के लिए, मातुः—माता के, संमुखः—सामने, गतः—चला गया। माताऽपि—माता ने भी, रुधिक्लिन्नमुखम्—रुधिर से गीले मुख वाले, तम्—उसको, अवलोक्य—देखकर, शङ्कितचित्ता—शङ्कित चित्त होकर, नूनम्—निश्चित रूप से, दुरात्मना—दुष्टात्मा,

अनेन—इस (नेवले ने), दारकः—पुत्र को, भक्षितः—खा लिया है, इति—इस प्रकार, विचिन्त्य—सोचकर, कोपात्—क्रोध से, तस्योपरि—उस नेवले पर, तम्—उस, जलकुम्भं चिक्षेप—जलकुम्भ को फेंक दिया।

एवं सा नकुलं व्यापाद्य यावत्प्रलपन्ती गृहे आगच्छति, तावत्सुतस्तथैव सुप्तस्तिष्ठति। समीपे कृष्णसर्पं खण्डशः कृतमवलोक्य पुत्रवधशोकेनात्मशिरो वक्षः स्थलं च ताडितुमारब्धा। अत्रान्तरे ब्राह्मणो गृहीतनिर्वापः समायातो यावत्पश्यति तावत्पुत्रशोकादभितप्ता ब्राह्मणी प्रलपति—"भो भो लोभात्मन्! लोभाऽभिभूतेन त्वया न कृतं मद्वचः। तदनुभव साम्प्रतं पुत्रमृत्युदुःखवृक्षफलम्।"

एवम्—इस प्रकार, सा—वह ब्राह्मणी, नकुलम्—नेवले को, व्यापाद्य=मार कर, यावत्प्रलपन्ती—जब तक प्रलाप करती हुई, गृहे—घर, आगच्छति—आई, तावत्सुतः—तब तक पुत्र, तथैव—उसी प्रकार, सुप्तस्तिष्ठति—सोया हुआ था, समीपे—पास में, कृष्णसर्पम्—काले साँप को, खण्डशः कृतम्—टुकड़े हुआ, अवलोक्य—देखकर, पुत्रवधशोकेन—पुत्रवध के शोक से, [नकुल वध के शोक से] आत्मशिरः—अपना सिर, वक्षः-स्थलं च—और छाती, ताडितुमारब्धा—पीटने लगी,। अत्रान्तरे—इसी बीच, ब्राह्मणः—ब्राह्मण, गृहीतनिर्वापः—भिक्षा लेकर, समायातः—आकर, यावत्पश्यति—ज्यों ही देखता है, तावत्पुत्रशोकाऽभितप्ता—तब पुत्रशोक से संतप्त, ब्राह्मणी—ब्राह्मणी, प्रलपति—प्रलाप करती है, भो भो लोभात्मन्—अरे लोभी! लोभाऽभिभूतेन—लोभ से अभिभूत होकर, त्वया—तुमने, मद्वचः—मेरा कहा हुआ, न कृतम्—नहीं किया, साम्प्रतम्—इस समय, पुत्रमृत्युदुःखवृक्षफलम्—बेटे की मृत्यु के दुःख रूपी वृक्ष का फल, अनुभव—अनुभव करो।

अथवा साध्विदमुच्यते—

अतिलोभो न कर्त्तव्यो लोभं नैव परित्यजेत्।
अतिलोभाऽभिभूतस्य चक्रं भ्रमतिमस्तके ॥२१॥

ब्राह्मण आह—"कथमेतत्"? सा प्राह—

अथवा—अथवा, साध्विदमुच्यते—ठीक ही कहा है,—

अतिलोभः—अत्यधिक लालच, न—नहीं, कर्त्तव्यः—करना चाहिए, लोभम्—लोभ को, नैव—सर्वथा नहीं, परित्यजेत्—छोड़ना चाहिए, अतिलोभाऽभिभूतस्य—अत्यधिक लोभी मनुष्य के, मस्तके—मस्तक पर, चक्रं भ्रमति—चक्र घूमता है।

भाव=अत्यधिक लोभ हानिकारक होता है और लोभ का सर्वथा न होना भी हानिकारक ही होता है।

ब्राह्मण आह—ब्राह्मण ने कहा

कथमेतत्—वह कैसे?

सा प्राह—उसने कहा—

लोभाविष्टचक्रधर-कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणपुत्राः परस्परं मित्रतां गता वसन्ति स्म। ते चाऽपि दारिद्र्योपहताः परस्परं मन्त्रं चक्रुः—अहो, धिगियं दरिद्रता। उक्तं च—

वरं वनं व्याघ्रगजादिसेवितं, जनेन हीनं बहुकण्टकावृतम्।
तृणानि शय्या परिधानवल्कलं, न बन्धुमध्ये धनहीन जीवितम् ॥२३॥

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने—किसी स्थान पर, चत्वारः—चार, ब्राह्मणपुत्राः-ब्राह्मण कुमार, परस्परम्—आपस में, मित्रतां गताः—मित्रता को प्राप्त हुए अर्थात् मैत्रीभाव से, वसन्ति स्म—रहते थे, दारिद्र्योपहताः—दारिद्र्य से पीड़ित, ते—उन्होंने, परस्परम्—आपस में, मन्त्रं चक्रुः—विचार किया, अहो—ओह। इयं दरिद्रता—यह दरिद्रता, धिग्—धिक्कार योग्य है, उक्तं च—कहा भी है—

व्याघ्रगजादि सेवितम्—व्याघ्र हाथी आदि हिंसक पशुओं से युक्त। जनेन-हीनम्—निर्जन, बहुकण्टकावृत—अनेक काँटों से आच्छादित, वनम्—वन तृणानि शय्या—जहाँ तिनके ही शय्या हैं,। तथा परिधा नवल्कलम्—वल्कल ही परिधान है [जहाँ वृक्ष की छाल के वस्त्र पहने जाते हैं ऐसा वन] वरम्—श्रेष्ठ है। बन्धुमध्ये—सम्बन्धियों के बीच, धनहीनजीवितं न—निर्धन होकर जीना ठीक नहीं।

भाव—सम्बन्धियों के बीच निर्धन होकर जीने की अपेक्षा जंगल में रहना कहीं अच्छा है।

टिप्पणी—बहुकण्टकावृतम्-यहाँ कण्टक का अभिप्राय काँटों के साथ-साथ दुःख भी है।

तथा च—

स्वामी द्वेष्टिसुसेवितोऽपि, सहसा प्रोज्झन्ति सद्बान्धवाः,
राजन्ते न गुणास्त्यजन्ति तनुजाः स्फारीभवन्त्यापदः।
भार्या साधु सुवंशजाऽपि भजते नो, यान्ति मित्राणि च;
न्यायारोपितविक्रमाण्यपि नृणां, येषां न हि स्याद्धनम् ॥२४॥

तथा च—और—

येषां नृणाम्—जिन मनुष्यों के पास, धनम्—सम्पत्ति, न स्यात्—नहीं होती [उनसे], सुसेवितोऽपि—अच्छी प्रकार से सेवा किया गया भी, स्वामी—प्रभु, द्वेष्टि—द्वेष करता है, सद्बान्धवाः—अच्छे सम्बन्धी [निकटस्थ सम्बन्धी], सहसा—सहसा, प्रोज्झन्ति—छोड़ देते हैं, गुणाः—लोकोपकारादि अच्छे गुण भी,

न राजन्ते—शोभा नहीं देते हैं, तनुजाः—पुत्र-पुत्रियाँ, त्यजन्ति—छोड़ देते हैं, आपदः—विपत्तियाँ, स्फारी भवन्ति—बढ़ जाती हैं, सुवंशजाः—अच्छे कुल में उत्पन्न, अपि—भी, भार्या—पत्नी, साधु न भजते—भली प्रकार सेवा नहीं करती है। न्यायारोपितविक्रमाणि—न्यायपूर्वक जिन्होंने वीरता का आरोप किया है (ऐसे भी), मित्राणि—मित्र, यान्ति—छोड़ जाते हैं।

भाव—निर्धन व्यक्ति का साथ स्वाभाविक बन्धु भी छोड़ देते हैं।

शूरः सुरूपः सुभगश्च वाग्मी, शस्त्राणि शास्त्राणि विदांकरोतु।
अर्थं विना नैव यशश्च मानं, प्राप्नोति मर्त्योऽत्र मनुष्यलोके ॥२५॥

शूरः—वीर, सुरूपः—सुन्दर, सुभगः—सौभाग्यशाली, वाग्मी—वाक्पटु, शस्त्राणि—शस्त्रास्त्र विद्या [तथा] शास्त्राणि—शास्त्रों को, विदां करोतु—जानें, मर्त्यः—कोई भी व्यक्ति, अत्र—इस, मनुष्यलोके—मृत्यु लोक में, अर्थं विना—धन के बिना, यशः—प्रतिष्ठा, च—और, मानम्—सम्मान को, नैव प्राप्नोति—नहीं प्राप्त कर पाता है।

भाव—बहुगुण सम्पन्न भी व्यक्ति इस मर्त्यलोक में धन के बिना मान नहीं पाता।

तानीन्द्रियाण्यविकलानि, तदेव नाम, सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव बाह्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत ॥२६॥

एतद्—यह, विचित्रम्—आश्चर्य की बात है (मनुष्य की) तानि—वे हो, अविकलानि—अविकृत (अर्थात् कार्यकुशल), इन्द्रियाणि—इन्द्रियां, (विद्यमान रहती हैं), तदेव नाम—वही नाम है (उसका नाम भी वही रहता है), सा बुद्धिरप्रतिहता—वही तीक्ष्ण बुद्धि रहती है, तदेव वचनम्—वही वाणी रहती है, स एव पुरुषः—वही पुरुष होता है (किन्तु), अर्थोष्मणा विरहितः—अर्थ की उष्णता के समाप्त होने पर, क्षणेन बाह्यः भवति—क्षण भर में पराया हो जाता है।

भाव—निर्धन अवस्था में व्यक्ति को लोग पहचानते तक नहीं यद्यपि उसकी समस्त इन्द्रियाँ, अङ्ग आदि सभी कुछ पूर्ववत् होता है किन्तु धन चले जाने से सभी साथ छोड़ जाते हैं।

"तद्गच्छामः कुत्रचिदर्थाय।" इति संमन्त्र्य स्वदेशं पुरं च स्वसुहृत्सहितं गृहं च परित्यज्य प्रस्थिताः। अथवा साध्विदमुच्यते—

तद्—तो, कुत्रचिदर्थाय कहीं अर्थोपार्जन के लिए, गच्छामः—चलें, इति—इस प्रकार संमन्त्र्य—विचार करके, स्वदेशम्—अपना देश, पुरम् च—

और नगर (तथा) स्वसुहृत्सहितम्—अपने बन्धु बान्धवयुक्त, गृहम्—घर को, परित्यज्य—छोड़कर, प्रस्थिताः—चले गए।

अथवा साध्विदमुच्यते—अथवा यह ठीक ही कहा गया है कि—

सत्यं परित्यजति मुञ्चति बन्धुवर्गं, शीघ्रं विहाय जननीमपि जन्मभूमिम्।
सन्त्यज्य, गच्छति विदेशमभीष्टलोकं, चिन्ताकुलीकृतमतिः पुरुषोऽत्र लोके ॥२७॥

अत्र लोके—इस संसार में, चिन्ताकुलीकृतमतिः—चिन्ताओं से व्याकुल चित्त, पुरुषः—मनुष्य। सत्यम्—सचमुच, परित्यजति—छोड़ देता है (किनको), बन्धुवर्गं मुञ्चति—कुल परिवार को छोड़ देता है जननी जन्मभूमिमपि—जननी तथा जन्मभूमि को भी, विहाय—छोड़कर, अभीष्टलोकम्—अपने प्रिय स्थान को, सन्त्यज्य—छोड़कर, शीघ्रं विदेशम्—विदेश को, गच्छति—चला जाता है।

भाव—दारिद्र्यचिन्ताकुल व्यक्ति अर्थोपार्जन की चिन्ता से युक्त होकर अपनी समस्त प्रिय वस्तूओं को त्यागने के लिए भी उद्यत हो जाता है।

एवं क्रमेण गच्छन्तोऽवन्तीं प्राप्ताः। तत्र क्षिप्राजले कृतस्नानाः महाकालं प्रणम्य यावन्निर्गच्छन्ति, तावद् भैरवानन्दो नाम योगी संमुखो बभूव। ततस्तं ब्राह्मणोचितविधिना संभाव्य, तेनैव सह तस्य मठं जग्मुः। अथ तेन पृष्टाः—"कुतो भवन्तः समायाताः? क्व यास्यथ? किं प्रयोजनम्?"

एवम्—इस प्रकार, क्रमेण—क्रम से, गच्छन्तः—जाते हुए, अवन्तीम्—उज्जयिनी में, प्राप्ताः—पहुंचे, तत्र—वहाँ क्षिप्राजले कृतस्नानाः—क्षिप्रा नदी के जल में स्नान करके, महाकालं प्रणम्य—महाकाल को प्रणाम करके, (महाकाल नामक शिवलिङ्ग के दर्शन किए), यावन्निर्गच्छन्ति—जैसे ही बाहर निकले, तावद् भैरवानन्दः—तभी भैरवानन्द नामक, योगी संमुखः बभूव—योगी सामने दिखाई दिया, ततः—तब, तम्—उसे, ब्राह्मणोचितविधिना—ब्राह्मणोचित विधि से, संभाव्य—प्रणाम करके, तेनैव सह—उसके साथ ही, तस्य—उस योगी के, मठम्—मठ को जग्मुः—चले गए, अथ—तदनन्तर, तेन पृष्टाः—उन योगी से पूछे गए, कुतः—कहाँ से, भवन्तः—आप सब, सामायाता—आए हैं? क्व—कहाँ, यास्यथ—जएँगे, किं प्रयोजनम्—किस अभिप्राय से जा रहे हैं?

ततस्तैरभिहितम्—"वयं सिद्धियात्रिकाः तत्र यास्यामो यत्र धनाप्तिर्मृत्युर्वा भविष्यतीत्येष निश्चयः।" उक्तं च—

ततः—तब, तैः—उन्होंने, अभिहितम् कहा, वयम्—हम सिद्धियात्रिका—कार्य-सिद्धि के लिए यात्री हैं, तत्र—वहाँ, यास्यामः—जाएंगे, यत्र—जहाँ,

धनाप्तिः—धन की प्राप्ति होगी. वा—अथवा, मृत्युः मृत्यु, भविष्यति—होगी, एव—यह, निश्चयः—दृढ निश्चय है, उक्तं च—कहा भी है—

दुष्प्राप्याणि बहूनि च लभ्यन्ते वाञ्छितानि द्रविणानि।
अवसरतुलिताभिरलं तनुभिः साहसिकपुरुषाणाम् ॥२८॥

अवसरतुलिताभिः—अवसरके अनुकूल तोलकर प्रयुक्त किए जाने वाले, तनुभिः शरीर से, साहसिक पुरुषाणाम्—साहसी पुरुषों को, बहूनि—बहुत से, दुष्प्राप्याणि—दुर्लभ, वाञ्छितानि - अभीष्ट, द्रविणानि—धन, अलंलभ्यन्ते—पूर्णरूप से प्राप्त होते हैं

भाव—अभीष्ट सिद्धि के लिए विचार और साहस नितान्त आवश्यक होते हैं। जो साहसी व्यक्ति अवसर के अनुसार विचार पूर्वक तोलकर अपने शरीरों का प्रयोग करते हैं वे अवश्यमेव अभीष्ट अर्थ को प्राप्त कर लेते हैं।

तथा च -

पतति कदाचिन्नभसः खाते, पातालतोऽपि जलमेति।
दैवमचिन्त्यं बलवद् बलवान्ननु पुरुषकारोऽपि ॥२९॥

तथाच—और भी—

अचिन्त्यम्—अचिन्त्य अर्थात् न सोचा गया, दैवम्—भाग्य, बलवत्-बलवान् होता है, ननु—निश्चित रूप से, पुरुषकारोऽपि · पुरुषार्थ भी, बलवान्—बलवान् होता है, कदाचिद्—कभी, जलम्—पानी, नभसः—आकाश से, खाते—जलाशय में, पतति—गिरता है, (और कभी) पातालतोऽपि—पाताल से भी (अर्थात् पुरुषार्थ से खोदे गए कूप आदि से भी), जलम्—जल, एति—निकलता है।

भाव—यह सत्य है कि भाग्य चक्र बहुत प्रबल होता है। किन्तु इस कारण पुरुषार्थ की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि जो भाग्य में होगा हो जाएगा। पुरुषार्थ तो अवश्य करना चाहिए उसके बिना कार्य-सिद्धि सम्भव नहीं। भाग्य तो साथ दे सकता है किन्तु कार्य की सफलता तो पुरुषार्थ से ही सम्भव है। यह ठीक है कि यदि भाग्य अनुकूल नहीं है तो पुरुषार्थ व्यर्थ जाएगा और उसके अनुकूल होने पर सुफल देने वाला होगा किन्तु मात्र भाग्य के सहारे बैठकर, पुरुषार्थ न करने पर कार्य-सिद्धि नहीं होती।

अभिमतसिद्धिरशेषा भवति हि पुरुषस्य पुरुषकारेण।
दैवमिति यदपि कथयसि पुरुषगुणः सोऽप्यदृष्टाख्यः ॥३०॥

हि—निश्चित रूप से, पुरुषकारेण—पुरुषार्थ से, पुरुषस्य—पुरुष के, अशेषा—समस्त, अभिमतसिद्धिः—अभिलषित वस्तुओं की उपलब्धि, भवति-

होती है, यदपि—जो भी, दैवम्—भाग्य, इति—इस प्रकार, कथयसि - कहते हो, सोऽपि—वह भी, अदृष्टाख्यः— अदृष्ट नामक, पुरुष गुणः—पुरुष का ही गुण है।

भाव—इस श्लोक के माध्यम से भाग्यवादी व्यक्ति को यह स्पष्ट किया गया है कि पुरुषार्थ छोड़कर मात्र भाग्य को मानना उचित नहीं क्यों कि भाग्य भी वस्तुनः पूर्वजन्मों में किया गया पुरुषार्थ ही है अर्थात् पूर्वजन्मों में किए गए कार्यों का फल भाग्य रूप से हमें इस जन्म में प्राप्त होता है। तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है—

पूर्व जन्म कीन्हें जो धर्मा, सोइ भाग्य कहावें कर्मा।

अर्थात् पूर्वजन्म में जो धर्म-कार्य किए जाते है वही धर्म-कार्य इस जन्म में भाग्य कहलाते हैं।

द्वयमतुलं गुरु लोकात्तृणमिव तुलयन्ति साधु साहसिकाः।
प्राणानद्भुतमेतच्चरित चरितं ह्युदाराणाम् ॥ ३१ ॥

साहसिकाः—साहसी पुरुष, प्राणान्—प्राणों को, तृणमिव—तिनके के समान [समझकर] साधु—भली प्रकार, हि—निश्चित रूप से, तुलयन्ति—तोल देते हैं, एतदद्भुतम्—ऐसा अद्भुत, चरितम्—व्यवहार, च - और, उदाराणाम् चरितम्—उदार व्यक्तियों का व्यवहार, द्वयम्—दोनों, लोकात्—लोक व्यवहार से, गुरु—श्रेष्ठ (एवं), अतुलम् अतुलनीय, भवति—होता है।

भाव—साहसी व्यक्ति कार्य करते हुए मार्ग में आने वाली बाधाओं से होने वाले कष्ट की भी परवाह नहीं करते। वस्तुतः उनका लक्ष्य तो—'कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्' है अर्थात् 'कार्य को सिद्ध करूंगा अथवा देह त्याग दूंगा' होता है।

क्लेशस्याऽङ्गमदत्वा सुखमेव सुखानि नेह लभ्यन्ते।
मधुभिन्मथनायस्तैराश्लिष्यति बाहुभिर्लक्ष्मीम् ॥ ३२ ॥

इह—इस संसार में, अङ्गम्—शरीर को, क्लेशस्य—कष्ट के, अदत्वा—दिए बिना, सुखमेव—सुख पूर्वक ही, सुखानि सुख न—नहीं, लभ्यन्ते—प्राप्त होते हैं, मधुभित्—मधु को मारने वाले विष्णु [मधु नामक राक्षस को], मथनायस्तैः—समुद्र-मन्थन से श्रान्त अर्थात् थकी हुई, बाहुभिः—बाँहों से, लक्ष्मीम्-लक्ष्मी का, आलिष्यति—आलिङ्गन करते हैं।

भाव—सुख प्राप्त करने के लिए शरीर को कष्ट देना आवश्यक है क्योंकि बिना परिश्रम किए कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता।

तस्य कथं न चला स्यात् पत्नी विष्णोर्नृसिंहकस्याऽपि।
मासांश्चतुरो निद्रां यः सेवति जलगतः सततम् ॥३३॥

यः जो, (विष्णु) जलगतः– जल में [क्षीर सागर में], चतुरो मासान्— चार मास तक, सततम्—निरन्तर, निद्राम् सेवति – शयन करते हैं, नृसिंहकस्य— मनुष्यों में श्रेष्ठ, अपि—भी, तस्य विष्णोः—उस विष्णु की, पत्नी—स्त्री लक्ष्मी, चला —चञ्चल, कथं न स्यात्—किस प्रकार न हो।

भाव—पुरुष श्रेष्ठ भगवान् विष्णु की भी पत्नी (लक्ष्मी) इसलिए चंचल है क्यों कि उसका पति चार मास तक उद्योग रहित होकर सागर में सोया रहता है।

दुरधिगमः परभागो यावत्पुरुषेण साहसं न कृतम्।
जयति तुलामधिरूढो भास्वानिह जलदपटलानि ॥३४॥

यावत्पुरुषेण—पुरुष जब तक, साहसं न कृतम् पौरुष नहीं करता [तब तक], परभागो दुरधिगमः - विजय दुलर्भ है, इह—संसार में, भास्वान्—सूर्य, तुलामधिरूढः—जब तुला राशि पर आरूढ़ होता हैं, [तब] जलदपटलानि –बादलों के समूहों को जयति—जीतता है।

भाव विना परिश्रम किए किसी को भी विजय प्राप्त नहीं होती। सूर्य जैसे तेजस्वी को भी बादलों पर विजय पाने के लिए तुला राशि पर आरूढ़ होना पड़ता है।

तत्कथ्यतामस्माकं कश्चिद् धनोपायो विवरप्रवेशशाकिनीसाधनश्मशानसेवनमहामांसविक्रयसाधकवर्तिप्रभृतीनामेकतम इति। अद्भुतशक्तिर्भवान् श्रूयते। वयमप्यतिसाहसिकाः। उक्तं च –

तत्—तब, अस्माकम्—हमें, कश्चिद्—कोई, धनोपायः—धनप्राप्ति का उपाय, कथ्यताम्—कहो, विवर प्रवेशः—भूगर्भ प्रवेश, शाकिनी-साधनम्— शाकिनी साधन [यक्षिणी—साधन], श्मशानसेवनम्—श्मशान का सेवन करना, महामांसविक्रयः—नरमांस विक्रय, साधकवर्तिप्रभृतीनाम्—साधक गुटिका बनाना, (इस प्रकार का) एकतमः - कोई एक भी [साधन बताइए], अद्भुतशक्तिर्भवान्- आप अद्भुत शक्ति सम्पन्न, श्रूयते—सुने जाते हैं, वयमपि—हम भी, अति- साहसिकाः—अत्यधिक साहसी हैं, उक्तं च—कहा भी है—

महान्त एव महतामर्थं साधयितुं क्षमाः।
ऋते समुद्रादन्यः को बिभर्ति वड्वाऽनलम् ॥ ३५ ॥

महान्तः—महापुरुष, एव – ही महताम्—श्रेष्ठ पुरुषों के, अर्थम्— कार्य को, साधयितुम सम्पन्न करने में, क्षमाः—समर्थ होते हैं, ऋते समुद्रात्— समुद्र को छोड़कर, अन्यः कः—दूसरा कौन, वड्यानलम्—वड्वानल को, बिभर्ति— धारण करता है।

भाव—जिस प्रकार वड्वानल को धारण करने का सामर्थ्य समुद्र के अतिरिक्त और किसी में नहीं होता उसी प्रकार श्रेष्ठ कार्यों को करने का सामर्थ्य भी श्रेष्ठ व्यक्तियों के अतिरिक्त और किसी में नहीं होता।

भैरवानन्दोऽपि तेषां सिद्धयर्थं बहूपायं सिद्धवर्तिचतुष्टयं कृत्वाऽर्पयत्। आह च—"गम्यतां हिमालयदिशि। तत्र संप्राप्तानां यत्र वर्तिः पतिष्यति तत्र निधानमसन्दिग्धं प्राप्स्यथ। तत्र स्थानं खनित्वा निधिं गृहीत्वा व्याघुट्यताम्।"

भैरवानन्दोऽपि—भैरवानन्द ने भी, तेषाम्—उनकी, सिद्धयर्थं—कार्य-सिद्धि के लिए, बहूपायम्—बहुत उपाय करके, सिद्धवर्तिचतुष्टयम्—चार सिद्ध वर्त्तिकाएं, कृत्वा—बनाकर, अर्पयत्—दे दीं, आह च—और कहा, हिमालयदिशि—हिमालय की दिशा में, गम्यताम्—जाओ। तत्र सम्प्राप्तानाम्—वहाँ पहुचने पर, यत्र—जहाँ, (जिस स्थान में) वर्तिः पतिष्यति—वर्ति गिरेगी, तत्र—वहाँ, निधानम्—भूमिगतधन, असन्दिग्धम्—निःसंदेह, प्राप्स्यथ—प्राप्त करोगे, तत्र—वहाँ, स्थानम्—उस स्थान को, खनित्वा—खोदकर, निधिम—धन को, गृहीत्वा—ग्रहण करके, व्याघुटचताम्—लौट आना।

तथाऽनुष्ठिते तेषां गच्छतामेकतमस्य हस्ताद्वर्तिर्निपपात। अथाऽसौ यावत्तं प्रदेशं खनति, तावत्ताम्रमयी भूमिः। ततस्तेनाऽभिहितम्—"अहो, गृह्यतां स्वेच्छया ताम्रम्।" अन्ये प्रोचुः—"भो मूढ! किमनेन क्रियते यत् प्रभूतमपि दारिद्रय न नाशयति। तदुत्तिष्ठ अग्रतो गच्छामः।" सोऽब्रवीत्—"यान्तु भवन्तः। नाऽहमग्रे यास्यामि।" एवमभिधाय ताम्रं यथेच्छया गृहीत्वा प्रथमो निवृत्तः।

तथाऽनुष्ठिते—वैसा करने पर, (सिद्धवर्तिकाओं को लेकर) तेषाम्—उनके, गच्छताम्—जाते हुए, (हिमालय दिशा की ओर) एकतमस्य—एक के, हस्ताद्—हाथ से, वर्तिः—वर्ति, निपपात—गिर पड़ी। अथाऽसौ—इसके अनन्तर उसने, यावत्—जब, तं प्रदेशम्—उस प्रदेश को, खनति—खोदा, तावत्—तब, ताम्रमयी भूमिः—तांबे की भूमि (देखी)। ततः—तब, तेनाऽभिहितम्—उसने कहा, अहो—अहो, ताम्रम्—तांबा, स्वेच्छया—यथेष्ट, गृह्यताम्—ग्रहण करो, अन्ये—दूसरे साथी, प्रोचुः—बोले, भो मूढ—अरे मूर्ख! किमनेन क्रियते—इससे क्या करेंगे, यत्—क्योंकि, प्रभूतमपि—अत्यधिक भी, दारिद्रयम्—दरिद्रता को, न नाशयति—नाश नहीं करेगा (अर्थात् तांबा अत्यधिक मात्रा में ले लें तो भी हमारी दरिद्रता दूर नहीं होगी) तद्—तब, उत्तिष्ठ—उठो, अग्रतो गच्छामः—आगे जाते हैं, सोऽब्रवीत्—वह बोला, भवन्तः—आप लोग, यान्तु—जाएं, नाऽहमग्रे—मैं आगे नहीं, यास्यामि—जाऊँगा। एवमभिधाय—ऐसा कहकर, ताम्रम्—ताँबा, यथेच्छया गृहीत्वा—यथेष्ट लेकर, प्रथमो निवृत्तः—पहला लौट आया।

ते त्रयोऽपि अग्रे प्रस्थिताः। अथ किञ्चिन्मात्रं गतस्याऽग्रेसरस्य वर्तिर्निपपात। सोऽपि यावत्खनितुमारब्धस्तावद् रूप्यमयी क्षितिः। ततः प्रहर्षितः प्राह यत्—"भो भो, गृह्यतां यथेच्छया रूप्यम्। नाऽग्रे गन्तव्यम्।"

ते—वे, त्रयोऽपि—तीनों ही, अग्रे—आगे, प्रस्थिताः—बढ़ गए। अथ—तदनन्तर किञ्चिन्मात्रम्—कुछ ही (दूर), गतस्य—जाने पर, अग्रेसरस्य—सबसे आगे वाले की, वर्तिः—वर्ति, निपपात—गिर पड़ी। सोऽपि—उसने भी, यावत्—जब, खनितुमारब्धः—खोदना शुरू किया, तावत्—तब, रूप्यमयी—चाँदी से युक्त, क्षितिः—भूमि को

(देखा)। ततः—फिर, प्रहर्षितः—प्रसन्न होते हुए, प्राह—बोला, यत्—कि, भो भो—अरे अरे, यथेच्छया—यथेष्ट, रूप्यम्—चाँदी, गृह्यताम्—ले लो। नाऽग्रे गन्तव्यम्—आगे नहीं जाना चाहिए।

तावूचतुः—"भोः पृष्ठतस्ताम्रमयी भूमिः अग्रतो रूप्यमयी। तन्नूनमग्रे सुवर्णमयी भविष्यति। किंचाऽनेन प्रभूतेनाऽपि दारिद्र्यनाशो न भवति। तदावामग्रे यास्यावः।" एवमुक्त्वा द्वावप्यग्रे प्रस्थितौ। सोऽपि स्वशक्त्या रूप्यमादाय निवृत्तः।

तावूचतुः—वे दोनों बोले, भोः—अरे, पृष्ठतः—पीछे, ताम्रमयी भूमिः—ताँबे की भूमि है, अग्रतो रूप्यमयी—आगे चाँदी युक्त है। तत्—तब, नूनमग्रे—आगे निश्चित रूप से, सुवर्णमयी—सुवर्ण युक्त, भविष्यति—होगी, किंचाऽनेन प्रभूतेनाऽपि—और इस बहुत सी चाँदी से, दारिद्र्यनाशो—दरिद्रता का नाश, न भवति—नहीं होगा, तदावामग्रे—तब हम दोनों आगे, यास्यावः—जाएंगे। एवमुक्त्वा—इस प्रकार कहकर, द्वावप्यग्रे दोनों ने आगे, प्रस्थितौ—प्रस्थान किया, सोऽपि—वह भी (जिसकी वर्ति गिरी थी), स्वशक्तत्या—अपनी सामर्थ्य के अनुसार, रूप्यमादाय—चाँदी लेकर, निवृत्तः—लौट गया।

अथ तयोरपि गच्छतोरेकस्याऽग्रे वर्तिः पपात। सोऽपि प्रहृष्टो यावत्खनति, तावत्सुवर्णभूमिं दृष्ट्वा द्वितीयं प्राह—"भोः, गृह्यतां स्वेच्छया सुवर्णम्। सुवर्णादन्यन्न किञ्चिदुत्तमं भविष्यति।"

अथ—इसके अनन्तर, तयोरपि—उन दोनों के भी, (शेष दो मित्रों के भी) गच्छतोरेकस्याऽग्रे—जाते हुए एक आगे वाले की, वर्तिः—वर्ति, पपात—गिर गई, प्रहृष्टः—प्रसन्न हुआ, सोऽपि—वह भी, यावत्—जब, खनति—खोदता है, तावत्—तब, सुवर्णभूमिम्—सोने की भूमि को, दृष्ट्वा—देखकर, द्वितीयम्—दूसरे को, प्राह—बोला, भोः—अरे, स्वेच्छया—इच्छानुसार, सुवर्णम्—सोना, गृह्यताम्—ग्रहण करो। सुवर्णात्—सुवर्ण से, अन्यत्—दूसरा, किंचिद्—कुछ भी, उत्तमम्—उत्तम, न—नहीं, भविष्यति—होगा।

स प्राह—"मूढ़। न किंचिद् वेत्सि। प्राक्ताम्रं, ततो रूप्यं, ततः सुवर्णम्। तन्नूनमतः परं रत्नानि भविष्यन्ति, येषामेकतमेनाऽपि दारिद्र्यनाशो भवति। तदुत्तिष्ठ, अग्रे गच्छावः। किमनेन भारभूतेनाऽपि प्रभूतेन ?"

सः—वह, प्राह—बोला, मूढ—मूर्ख, किंचिद्—कुछ, न—नहीं, वेत्सि—तुम जानते, प्राक्—पहले, ताम्रम्—तांबा, ततः रूप्यम्—फिर चाँदी, ततः सुवर्णम्—फिर सोना (मिला है)। तन्नूनम्—तब निश्चित रूप से, अतः परम्—इसके अनन्तर, रत्नानि—रत्न, भविष्यन्ति—होंगे, येषाम्—जिनमें से, एकतमेनाऽपि—एक भी (रत्न से) दारिद्र्यनाशः—दरिद्रता नष्ट, भवति—हो जाएगी, तदुत्तिष्ठ—तब उठो, अग्रे—आगे, गच्छावः—जाते हैं, अनेन—इस सुवर्ण के, प्रभूतेन—अत्यधिक। भारभूतेनाऽपि—भार से भी, किम्—क्या होगा ?

स आह—"गच्छतु भवान्। अहमत्र स्थितस्त्वां प्रतिपालयिष्यामि।" तथाऽनुष्ठिते, सोऽपि गच्छन्नेकाकी, ग्रीष्माऽर्कप्रतापसन्तप्ततनुः पिपासाकुलितः, सिद्धिमार्गच्युत इतश्चेतश्च बभ्राम।

सः—वह, आह—बोला, भवान्—आप, गच्छतु—जाओ, अहम्—मैं, अत्र स्थितः—यहाँ ठहरकर, त्वाम्—तुम्हारी, प्रतिपालयिष्यामि—प्रतीक्षा करूंगा, तथाऽनुष्ठिते—ऐसा होने पर, सोऽपि—वह भी, एकाकी—अकेला, गच्छन्—जाते हुए, ग्रीष्माऽर्कप्रतापसन्तप्ततनुः—ग्रीष्म ऋतु के ताप से सन्तप्त काय होकर, पिपासाकुलितः—प्यास से व्याकुल हुआ, सिद्धिमार्गच्युतः—गन्तव्य मार्ग से स्खलित होकर, इतश्चेतश्च—इधर-उधर, बभ्राम—घूमने लगा।

अथ भ्राम्यन् स्थलोपरि पुरुषमेकं रूधिरप्लावितगात्रं भ्रमच्चक्रमस्तकमपश्यत्। ततो द्रुततरं गत्वा तमवोचत्—"भोः, को भवान्? किमेवं चक्रेण भ्रमता शिरसि तिष्ठसि? तत्कथय मे यदि कुत्रचिज्जलमस्ति।"

एवं तस्य प्रवदतस्तच्चक्रं तत्क्षणात्तस्य शिरसो ब्राह्मणमस्तके चटितम्।

अथ—इसके अनन्तर, भ्राम्यन्—घूमते हुए, स्थलोपरि—किसी स्थान पर, रूधिरप्लावितगात्रम्—खून से भरे हुए शरीर युक्त, भ्रमच्चक्रमस्तकम्—सिर पर घूमते हुए चक्र से युक्त व्यक्ति को, अपश्यत्—देखा, ततः—तब, द्रुततरम्—शीघ्र, गत्वा—जाकर, तमवोचत्—उससे बोला, भोः—अरे! को भवान्—आप कौन हैं? एवम्—इस प्रकार, शिरसि—सिर पर, भ्रमता—घूमते हुए, चक्रेण—चक्र से, किं तिष्ठसि—कैसे बैठे हैं? यदि—यदि, कुत्रचित्—कहीं, जलम्—जल, अस्ति—है, मे—मुझे, तत् कथय—उसे बताओ।

एवम्—इस प्रकार, तस्य—उस ब्राह्मण के, प्रवदतः—बोलते हुए, तच्चक्रम्—वह चक्र, तत्क्षणात्—उसी समय से, तस्य—उसके (उस पुरुष के) शिरसि—सिर से, ब्राह्मण मस्तके—ब्राह्मण के सिर पर, चटितम्—चढ़ गया।

स आह—"भद्र! किमेतत्?"

स आह—"ममाऽप्येवमेतच्छिरसि चटितम्?"

स आह—"तत्कथय कदैतदुत्तरिष्यति? महती मे वेदना वर्तते।"

स आह—"यदा त्वमिव कश्चिद्धृतसिद्धवर्तिरेवमागत्य, त्वामालापयिष्यति तदा तस्य मस्तकं चटिष्यति।"

स आह—"कियान्कालस्तवैवं स्थितस्य?"

स आह—"साम्प्रतं को राजा धरणीतले?"

स आह—"वीणावत्सराजः।"

स आह—उसने कहा, भद्र—भद्र, किमेतत्—यह क्या हो गया?

स आह—उसने कहा, ममापि—मेरे भी, शिरसि—सिर पर, एवम्—इसी प्रकार, एतत्—यह, चटितम्—चढ़ गया था।

स आह—उसने कहा, तत्कथय—तब कहो, कदैतत्—यह कब, उत्तरिष्यति—उतरेगा, मे—मुझे, महती—अत्यधिक, वेदना—पीड़ा, वर्तते—हो रही है।

स आह—उसने कहा, यदा—जब, त्वमिव—तुम्हारे समान, कश्चिद्—कोई, सिद्धवर्तिः—सिद्धवर्ति, एवमागत्य—इस प्रकार आकर, त्वामालपयिष्यति—तुम्हारे साथ बातचीत करेगा, तदा—तब, तस्य—उसके, मस्तकम्—मस्तक पर, चटिष्यति—चढ़ जाएगा।

स आह—उसने कहा, तवैवम्—तुम्हारे ऐसे, स्थितस्य—रहते हुए, कियान्कालः—कितना समय हो गया।

स आह—उसने कहा, साम्प्रतम्—इस सयय, धरणीतले—पृथ्वी पर, कः—कौन, राजा—राजा है?'

स आह—उसने कहा, वीणावत्सराजः—वीणावत्सराज है।

स आह—"अहं तावत्कालसङ्ख्यां न जानामि। परं यदा रामो राजासीत्तदाऽहं दारिद्र्योपहतः सिद्धवर्तिमादायानेन पथा समायातः। ततो मयाऽन्यो नरो मस्तकधृतचक्रो दृष्टः, पृष्टश्च। ततश्चैतज्जातम्।"

स आह—उसने कहा, अहम्—मैं, तावत्कालसङ्ख्याम्—समय की गणना, न जानामि—नहीं जानता, परम्—किन्तु, यदा—जब, रामः—राम, राजासीत्—राजा था, तदाऽहम्—तब मैं, दारिद्रचोपहतः—दरिद्रता से दुःखी होकर, सिद्धवर्तिमादाय—सिद्धवर्ति को लेकर, अनेन पथा—इस मार्ग से, समायातः—आया, ततः—तदनन्तर, मायाऽन्यः—मैंने एक दूसरा, नरः—मनुष्य, मस्तकधृतचक्रः—(जिसके) सिर पर चक्र था, दृष्टः—देखा, पृष्टश्च—और पूछा, ततश्च—और तब, एतज्जातम्—यह हो गया (अर्थात् चक्र के विषय में पूछा ही था कि यह चक्र मेरे सिर पर चढ़ गया था।)

स आह—"भद्र! कथं तवैवं स्थितस्य भोजनजलप्राप्तिरासीत्?"

स आह—"भद्र! धनदेन निधानहरणभयात्सिद्धानामेतच्चक्रपतनरूपं भयं दर्शितम्। तेन कश्चिदपि नागच्छति। यदि कश्चिदायाति, स क्षुत्पिपासानिद्रारहितो, जरामरणवर्जितः केवलमेवं वेदनामनुभुवति इति। तदाज्ञापय मां स्वगृहाय।" इत्युक्त्वा गतः।

स आह—उसने कहा, भद्र—भद्र,! तवैवंस्थितस्य—तुम्हारे ऐसे रहते हुए (माथे पर चक्र के रहते हुए) भोजनजलप्राप्तिः—भोजन पानी की प्राप्ति, कथम्—किस प्रकार होती थी?

स आह—उसने कहा, भद्र—भद्र! धनदेन—कुबेर ने, निधानहरणभयात्सिद्धानामेतच्चक्रपतनरूपम्—निधि के अपहरण किए जाने के भय से सिद्धों को यह चक्रपतनरूप, भयम्—भय, दर्शितम्—दिखाया है, तेन—इस कारण, कश्चिदपि—कोई भी, नागच्छति—नहीं आता है, यदि—यदि, कश्चिदायाति—कोई आता है, सः—वह, क्षुत्पिपासानिद्रारहितः—भूख, प्यास, निद्रा से रहित, जरामरणवर्जितः—वृद्धावस्था एवं मृत्यु से रहित होकर, केवलं वेदनाम्—केवल वेदना को, अनुभवति इति—इस प्रकार अनुभव करता है, तदाज्ञापय माम्—तब मुझे आज्ञा दो, स्वगृहाय—घर जाने की, इत्युक्त्वा—ऐसा कहकर, गतः—चला गया।

तस्मिश्चिरयति स सुवर्णसिद्धिस्तस्याऽन्वेषणपरस्तत्पदपङ्क्त्या यावत् किञ्चिद्वनान्तरमागच्छति, तावद्रुधिरप्लावितशरीरस्तीक्ष्णचक्रेण मस्तके भ्रमता सवेदनः क्वणन्नुपविष्टस्तिष्ठतीति ददर्श। ततः तत्समीपवर्तिना भूत्वा, सर्वार्थं पृष्टः—"भद्र ! किमेतत् ?"

तस्मिन्—उसके (मित्र के) चिरयति—देर करने पर, सः—वह, सुवर्णसिद्धिः—सुवर्णसिद्धि, तस्यान्वेषणपरः—उसको खोजते हुए, तत्पदपङ्क्त्या—उसके चरण-चिह्नों से, यावत्—जब, किञ्चिद्—किसी, वनान्तरमागच्छति—वन के मध्य आया, तावद्रुधिरप्लावितशरीरः—तब रुधिर-युक्त शरीर वाले, चक्रेण मस्तकेभ्रमता—माथे पर चक्र के घूमते हुए, सवेदनः—वेदना युक्त होकर, क्वणन्नुपविष्टः—विलाप करता हुआ बैठा, ददर्श—देखा, ततः—तब, तत्समीपवर्तिना भूत्वा—उसके पास जाकर, सर्वार्थं पृष्टः—सारा वृत्तान्त पूछा, भद्र—भद्र ! किमेतत्—यह क्या है ?

स आह—"विधिनियोगः।"

स आह—"कथं तत्, कथय कारणमेतस्य।" सोऽपि तेन पृष्टः, सर्वं चक्रवृत्तान्तमकथयत्। तत् श्रुत्वाऽसौ तं विगर्हयन्निद माह—"भो। निषिद्धस्त्वं मयाऽनेकशो न श्रृणोषि मे वाक्यम्। तत्किं क्रियते, विद्यावानपि, कुलीनोऽपि, बुद्धिरहितः। अथवा साध्विदमुच्यते—

स आह—उसने कहा, विधिनियोगः—भाग्य का चक्र है।

स आह—उसने कहा (सुवर्ण सिद्धि ने कहा), कथम् तत्—वह कैसे ? कथय कारणमेतस्य—इसका कारण बताओ।

सोऽपि—उसने भी, तेन पृष्टः—उसके पूछने पर, सर्वम्—सारा, चक्रवृत्तान्तमकथयत्—चक्रवृत्तान्त कहा, तत्—उसको, श्रुत्वा—सुनकर, असौ—वह मित्र, तम्—उसकी, विगर्हयन्—निन्दा करता हुआ, इदमाह—कहने लगा, भो—अरे, मया—मेरे अनेकशः—अनेक बार, निषिद्धः—मना करने पर, त्वम्—तुमने, मे वाक्यम्—मेरी बात, न श्रृणोषि—नहीं सुनी। तत्—तब, किं क्रियते—क्या किया जाए, विद्यावानपि—विद्वान्, (और) कुलीनोऽपि—कुलीन होते हुए भी तुम, बुद्धिरहितः—बुद्धिहीन हो। अथवा साध्विदमुच्यते—अथवा ठीक ही कहा गया है—

वरं बुद्धिर्नसा विद्या विद्याया बुद्धिरुत्तमा।
बुद्धिहीना विनश्यन्ति, यथा ते सिंहकारकाः ॥३६॥

चक्रधर आह "कथमेतत् ?" सुवर्णसिद्धिराह—

बुद्धिः—बुद्धि, वरम्—श्रेष्ठ है, सा—वह, विद्या न—विद्या नहीं, विद्याया—विद्या से, बुद्धिरुत्तमा—बुद्धि उत्तम है, बुद्धिहीनाः—बुद्धिरहित, विनश्यन्ति—नष्ट हो जाते हैं, यथा—जिस प्रकार, ते—वे, सिंहकारकाः—सिंह को जिलाने वाले (नष्ट हो गए थे)।

चक्रधर आह—चक्रधर ने कहा, कथमेतत्—यह कैसे ?

सुवर्णसिद्धिराह—सुवर्णसिद्धि ने कहा—

सिंहकारकमूर्खब्राह्मण-कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणपुत्राः परस्परं मित्रभावमुपगता वसन्ति स्म। तेषां त्रयः शास्त्रपारंङ्गताः परन्तु बुद्धिरहिताः। एकस्तु बुद्धिमान् केवलं शास्त्रपराङ्मुखः। अथ तैः कदाचिन्मित्रैर्मन्त्रितं—"को गुणो विद्यायाः येन देशान्तरं गत्वा भूपतीन् परितोष्यार्थोपार्जना न क्रियते। तत्पूर्वदेशं गच्छामः।"

कस्मिंश्चिद—किसी, अधिष्ठाने—स्थान पर, चत्वारः—चार, ब्राह्मणपुत्राः—ब्राह्मण-पुत्र, परस्परम्—आपस में, मित्रभावमुपगताः—मैत्रीभाव को प्राप्त हुए, वसन्ति स्म—रहते थे। तेषाम्—उनमें से, त्रयः—तीन, शास्त्रपारङ्गताः—शास्त्र मर्मज्ञ, परन्तु बुद्धिरहिताः—किन्तु बुद्धिरहित थे, एकस्तु—एक (उनमें से) केवलम्—केवल, बुद्धिमान्—बुद्धियुक्त था, शास्त्रपराङ्मुखः—(किन्तु) शास्त्र से विमुख था, अथ—इसके अनन्तर, तैः मित्रैः—उन मित्रों ने, कदाचित्—कभी, मन्त्रितम्—विचार किया, विद्यायाः—विद्या का, कः—क्या, गुणः—गुण है? (लाभ है) येन—यदि, देशान्तरम्—दूसरे देश में, गत्वा—जाकर, भूपतीन्—राजाओं को, परितोष्य—सन्तुष्ट करके, अर्थोपार्जना—धन संग्रह, न क्रियते—न किया जाए, तत्पूर्वदेशम्—तव पूर्व देश की ओर, गच्छामः—जाते हैं।

तथाऽनुष्ठिते किञ्चिन्मार्गं गत्वा, तेषां ज्येष्ठतरः प्राह—"अहो, अस्माकमेकश्चतुर्थो मूढः केवलं बुद्धिमान्। न च राजप्रतिग्रहो बुद्ध्या लभ्यते, विद्यां विना। तन्नास्मै स्वोपार्जितं दास्यामि। तद् गच्छतु गृहम्।" ततो द्वितीयेनाऽभिहितं—"भोः सुबुद्धे! गच्छ त्वं स्वगृहं, यतस्ते विद्या नास्ति।" ततस्तृतीयेनाऽभिहितम्—"अहो, न युज्यते एवं कर्तुम्, यतो वयं बाल्यात्प्रभृत्येकत्र क्रीडिताः। तदागच्छतु महाऽनुभावोऽस्मदुपार्जितवित्तस्य समभागी भविष्यतीति। उक्तंच—

तथाऽनुष्ठिते—ऐसा करने पर, किञ्चिन्मार्गम्—कुछ दूर, गत्वा—जाकर, तेषाम्—उनमें से, ज्येष्ठतरः—सबसे बड़ा, प्राह—बोला, अहो—अरे, अस्माकमेकः—हममें से एक, चतुर्थः—चौथा, मूढः—मूर्ख है (अर्थात् शास्त्र-विमुख है), केवलं बुद्धिमान्—केवल बुद्धिमान् है, च—और, राजप्रतिग्रहः—राजाओं से दान, विद्यां विना—बिना विद्या के, बुद्ध्या न—बुद्धि से नहीं, लभ्यते—प्राप्त होता, तत्—तब, अस्मै—इस मूर्ख को, स्वोपार्जितम्—अपने द्वारा अर्जित (अपने द्वारा कमाए गए धन में से) न दास्यामि—नहीं दूंगा, तद्—तब, गृहम्—घर, गच्छतु—चला जाए, ततः—तब, द्वितीयेनाऽभिहितम्—दूसरे ने कहा, भोः—अरे, सुबुद्धे—सुबुद्धि, त्वम्—तुम, स्वगृहम्—अपने घर, गच्छ—चले जाओ, यतः—क्योंकि, ते—तुम्हारे पास, विद्या नास्ति—विद्या नहीं है, ततस्तृतीयेनाऽभिहितम्—तब तीसरे ने कहा, अहो—अरे, एवम् कर्तुम्—ऐसा करना, न युज्यते—ठीक नहीं है, यतः—क्योंकि, वयम्—हम सब, बाल्यात्प्रभृत्येकत्र—बचपन से लेकर एक साथ, क्रीडिताः—खेले हैं।

तदागच्छतु—इसलिए आ जाए, महाऽनुभावः—यह महानुभाव, अस्मदु-पार्जितवित्तस्य—हमारे द्वारा कमाए गए धन में, समभागी—समान हिस्सेदार, भविष्यतीति—होगा, उक्तञ्च—कहा भी है—

किं तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला।
या न वेश्येव सामान्या पथिकैरूपभुज्यते ॥३७॥

या—जो (लक्ष्मी), सामान्या—सामान्य, वेश्या इव—वैश्या के समान, पथिकैः—पथिकों के द्वारा, न उपभुज्यते—उपभोग नहीं की जाती, या—जो (लक्ष्मी) केवला—केवल, वधूरिव—कुलवधू के समान (है), तया—उस, लक्ष्म्या—लक्ष्मी से, किं क्रियते—क्या लाभ ?

भाव—वैश्या जिस प्रकार सर्वसामान्य के लिए भोग्या होती है उसी प्रकार यदि लक्ष्मी का उपभोग भी सर्वसामान्य करें तो वह अधिक उपयोगी है। कुलवधू के समान लक्ष्मी को रखने पर तो उसका लाभ मात्र एक व्यक्ति को मिलेगा। जैसे कुलवधू का उपभोग केवल एक ही व्यक्ति करता है।

तथा च—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥३८॥

तथा च—और भी—

अयम्—यह, निजः—अपना है, परः वा—या दूसरे का है, इति—इस प्रकार की, गणना—गिनती (विचार), लघुचेतसाम्—क्षुद्र मन वालों की (होती है), उदारचरितानान्तु—उदार चरित व्यक्तियों के लिए तो, वसुधैव—सम्पूर्ण पृथ्वी ही, कुटुम्वकम्—अपना परिवार (होती है)।

भाव—यह मेरा है यह पराया है इस प्रकार का विचार छोटेपन का परिचायक है। विशाल हृदय वाले तो अपने और पराए के भेद को मिटा देते हैं। उनके हृदय में तो समस्त विश्व की एक घर के समान कल्पना होती है—'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्'—अर्थात् जहां संसार एक घोंसले के समान होता है, वे ही लोग उदार हृदय वाले होते हैं।

तदागच्छत्वेषोऽपि इति। तथाऽनुष्ठिते तैर्मार्गाश्रितैरटव्यां कतिचिदस्थीनि दृष्टानि। ततश्चैकेनाऽभिहितम्—"अहो, अद्य विद्याप्रत्ययः क्रियते। किञ्चिदेतत्सत्त्वं मृतं तिष्ठति। तद् विद्याप्रभावेण जीवनसहितं कुर्मः। अहमस्थिसंचयं करोमि।" ततश्च तेनौत्सुक्यादस्थिसंचयः कृतः। द्वितीयेन चर्ममांसरुधिरं संयोजितम्। तृतीयोऽपि यावज्जीवनं संचारयति, तावत्सुबुद्धिना निषिद्धः—"भोः तिष्ठतु भवान्। एष सिंहो निष्पाद्यते। यद्येनं सजीवं करिष्यसि ततः सर्वानपि व्यापादयिष्यति।" इति तेनाऽभिहितः स आह—"धिङ्मूर्ख ! नाऽहं विद्याया विफलतां करोमि।" ततस्तेनाऽभिहितम्—"तर्हि प्रतीक्षस्व क्षणं, यावदहं वृक्षमारोहामि।"

तदा—तब, एषोऽपि—यह भी, आगच्छतु इति—आ जाए, तथाऽनुष्ठिते—वैसा करने पर (अर्थात् चौथे मित्र को भी साथ आने की स्वीकृति देने के बाद), तैः—उन्होंने, मार्गाश्रितैः—मार्ग में जाते हुए, अटव्याम्—जङ्गल में, कतिचिदस्थीनि—कुछ अस्थियाँ, दृष्टानि—देखीं, ततश्च—और फिर, एकेनाऽभिहितम्—एक ने कहा, अहो—अरे, अद्य—आज, विद्याप्रत्ययः—विद्या की परीक्षा, क्रियते—की जाए, एतत्—यह किञ्चिद्—कोई, सत्त्वम्—प्राणी, मृतम्—मरा हुआ, तिष्ठति—स्थित है, तद्—तब, विद्याप्रभावेण—विद्या के प्रभाव से, जीवनसहितम्—जीवित, कुर्मः—करते हैं, अहम्—मैं, अस्थिसञ्चयम्—अस्थियों को एकत्रित (अर्थात् यथास्थान रखता हूँ), करोमि—करता हूँ, ततश्च—और फिर, तेन—उसने, औत्सुक्यात्—उत्सुकतावश, अस्थिसंचयःकृतः—अस्थियों को एकत्रित किया, द्वितीयेन—दूसरे ने, चर्ममांसरुधिरम्—चर्म, मांस एवं रक्त,संयोजितम्—संयोजित किया, (अर्थात् उसमें रक्तादि का संचार किया) तृतीयोऽपि—तीसरा भी, यावत्—जब, जीवनम्—प्राण, सञ्चारयति—संचार करने लगा, तावत्—तब, सुबुद्धिना—सुबुद्धि ने, निषिद्धः—मना किया, भोः—अरे, तिष्ठतु भवान्—आप रुक जाओ, एष—यह, सिंहः—शेर, निष्पाद्यते—जिला रहे हो। यद्येनम्—यदि इसे, सजीवम्—जीवित, करिष्यसि—करोगे, ततः—तो, सर्वानपि—सभी को, व्यापादयिष्यति—मार डालेगा।

इति—इस प्रकार, तेनाऽभिहितः—उसके कहने पर (सुबुद्धि के कहने पर), स आह—उसने कहा (तीसरे मित्र ने), धिङ् मूर्ख—मूर्ख! धिक्कार है, अहम्—मैं, विद्यायाः—विद्या को, विफलताम्—विफल, न करोमि—नहीं करता, ततः—तब, तेनाऽभिहितम्—उसने कहा (चौथे मित्र सुबुद्धि ने) तर्हि—तब, प्रतीक्षस्व क्षणम्—क्षण भरके लिए ठहरो, यावदहम्—जब तक मैं, वृक्षमारोहामि—वृक्ष पर चढ़ जाता हूँ।

तथाऽनुष्ठिते, यावत्सजीवः कृतस्तावत्ते त्रयोऽपि सिंहेनोत्थाय व्यापादिताः। स च पुनर्वृक्षादवतीर्य, गृहं गतः। अतोऽहं ब्रवीमि—

वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया बुद्धिरुत्तमा।
बुद्धिहीना विनश्यन्ति यथा ते सिंहकारकाः ॥३९॥ इति।

तथाऽनुष्ठिते—वैसे करने के बाद (अर्थात् सुबुद्धि के वृक्ष पर चढ़ने के बाद), यावत्सजीवः कृतः—जब जीवित किया गया, तावत्—तब, त्रयोऽपि—तीनों ही, सिंहेनोत्थाय—शेर ने उठाकर, व्यापादिताः—मार डाले, स च—और वह, पुनः—फिर, वृक्षादवतीर्य—वृक्ष से उतरकर, गृहम्—घर, गतः—चला गया, अतः—इसलिए, अहम्—मैं, ब्रवीमि—कहता हूँ—

वरम्—श्रेष्ठ है, बुद्धिः—बुद्धि, न सा विद्या—वह शास्त्रगत विद्या नहीं, विद्यायाः—विद्या से, बुद्धिः—बुद्धि, उत्तमा—उत्तम होती है, बुद्धिहीनाः—बुद्धि-रहित, विनश्यन्ति—नष्ट हो जाते हैं, यथा—जिस प्रकार, ते—वे, सिंहकारकाः—सिंह को जिलाने वाले (नष्ट हो गए)।

भाव—यदि बुद्धि और विद्या का संयोग हो तो अति सुन्दर होता है किन्तु यदि बुद्धि न हो मात्र विद्या अभ्यास से प्राप्त कर ली हो तो बिना सोचे समझे उसका उपयोग करने पर वह विद्या अपने लिए भी घातक सिद्ध हो सकती है। अतः हमने अपनी विद्या का उपयोग कहाँ करना है कहाँ नहीं इस ज्ञान के लिए बुद्धि होनी चाहिए। बुद्धि युक्त व्यक्ति तो व्यावहारिक ज्ञान के आधार पर अपना सफल जीवन बिता लेता है किन्तु विद्या युक्त व्यक्ति विवेक न होने की अवस्था में अपनी विद्या का ही ग्रास बन जाता है।

अतः परमुक्तं च सुवर्णसिद्धिना—

अपि शास्त्रेषु कुशला लोकाचारविवर्जिताः
सर्वे ते हास्यतां यान्ति, यथा ते मूर्खपण्डिताः ॥४०॥

चक्रधर आह—"कथमेतत्" ? सोऽब्रवीत्—

अतः परम्—इसके आगे, सुवर्णसिद्धिना—सुवर्ण सिद्धि ने, उक्तम्—कहा—, शास्त्रेषु—शास्त्रों में, कुशला—निपुण (व्यक्ति), लोकाचारविवर्जिताः—(किन्तु) लोक-व्यवहार से शून्य, सर्वे ते—वे सभी, हास्यताम्—उपहास को, यान्ति—प्राप्त होते हैं, यथा—जिस प्रकार, ते—वे, मूर्खपण्डिताः—मूर्खपण्डित हुए थे।

भाव—लोक-व्यवहार से शून्य व्यक्ति चाहे कितना भी विद्वान् क्यों न हो, हंसी का पात्र बनता है।

चक्रधर आह—चक्रधर ने कहा, कथमेतत्—यह कैसे, सः—वह (सुवर्णसिद्धि) अब्रवीत्—बोला—

मूर्ख-पण्डित कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणाः परस्परं मित्रत्वमापन्ना वसन्ति स्म। बालभावे तेषां मतिरजायत—"भोः! देशान्तरं गत्वा, विद्याया उपार्जनं क्रियते।"

अथान्यस्मिन्दिवसे ते ब्राह्मणाः परस्परं निश्चयं कृत्वा विद्योपार्जनार्थं कान्यकुब्जे गताः। तत्र च विद्यामठे गत्वा पठन्ति। एवं द्वादशाब्दानि यावदेकचित्ततया पठित्वा विद्याकुशलाऽस्ते सर्वे सञ्जाताः।

ततस्तैश्चतुर्भिर्मिलित्वोक्तम्—"वयं सर्वविद्यापारङ्गताः। तदुपाध्यायमुत्कलापयित्वा स्वदेशे गच्छामः। तथैवाऽनुष्ठीयतामित्युक्त्वा ब्राह्मणा उपाध्यायमुत्कलापयित्वा, अनुज्ञां लब्ध्वा, पुस्तकानि नीत्वा, प्रचलिताः। यावत्किञ्चिन्मार्गं यान्ति, तावद् द्वौ पन्थानौ समायातौ दृष्ट्वा उपविष्टाः सर्वे।

कस्मिंश्चिद्—किसी, अधिष्ठाने—स्थान पर, चत्वारः—चार, ब्राह्मणाः—ब्राह्मण, मित्रत्वमापन्नाः—मैत्री भाव से, वसन्ति स्म—रहते थे, बालभावे—बाल्यकाल में, तेषाम्—उनको, मतिरजायत्—विचार आया, भोः—अरे!, देशान्तरम्—दूसरे देश में, गत्वा—जाकर, विद्याया उपार्जनं—विद्याध्ययन, क्रियते—किया जाए।

अथ—तदनन्तर, अन्यस्मिन्दिवसे—दूसरे दिन, ते ब्राह्मणाः—वे ब्राह्मण, परस्परम्—आपस में, निश्चयं कृत्वा—निश्चय करके, विद्योपार्जनार्थम्—विद्याध्ययन के लिए, कान्यकुब्जे गताः—कान्यकुब्ज देश की ओर चल पड़े, तत्र च—और वहाँ, विद्यामठे—विद्यामठ में, गत्वा—जाकर, पठन्ति—अध्ययन करने लगे, एवम्—इस प्रकार, द्वादशाब्दानि—बारह वर्ष तक, यावदेकचित्ततया—एकाग्रचित्त से, पठित्वा—पढ़कर, विद्याकुशलाः—विद्याओं में निपुण, ते सर्वे—वे सारे, सञ्जाताः—हो गए।

ततः—तब, तैः—उन, चतुर्भिः—चारों ने, मिलित्वोक्तम्—मिलकर कहा, वयम्—हम सब, सर्वविद्यापारङ्गताः—सब विद्याओं में पारङ्गत हो चुके हैं, तदुपाध्यायम्—तब उपाध्याय की, उत्कलापयित्वा—अनुमति लेकर, स्वदेशे गच्छामः—अपने देश जाते हैं, तथैवऽनुष्ठीयताम्—वैसा ही करो, इत्युक्त्वा—ऐसा कहकर, ब्राह्मणाः—ब्राह्मण, उपाध्यायमुत्कलापयित्वा—उपाध्याय से पूछकर, अनुज्ञां लब्ध्वा—आज्ञा लेकर, पुस्तकानि नीत्वा—पुस्तकें लेकर, प्रचलिताः—चल पड़े। यावत्किञ्चिन्मार्गं—जब कुछ दूर, यान्ति—गए, तावद्—तब, द्वौ—दो, पन्थानौ—मार्ग, समायातौ—आए, दृष्ट्वा—देखकर, सर्वे—सभी, उपविष्टाः—बैठ गए।

तत्रैकः प्रोवाच—"केन मार्गेण गच्छामः?"

एतस्मिन्समये तस्मिन् पत्तने कश्चिद् वणिक्पुत्रो मृतः। तस्य दाहाय महाजनो गतोऽभूत्। ततश्चतुर्णां मध्यादेकेन पुस्तकमवलोकितं—"महाजनो येन गतः स पन्थाः" इति। तन्महाजनमार्गेण गच्छामः।

अथ ते पण्डिता यावन्महाजनमेलापकेन सह यान्ति, तावद्रासभः कश्चित्तत्र श्मशाने दृष्टः। अथ द्वितीयेन पुस्तकमुद्घाट्यावलोकितम्—

तत्रैकः—उनमें से एक, प्रोवाच—बोला, केन—किस, मार्गेण—मार्ग से गच्छामः—जाएं ?

एतस्मिन्समये—इसी समय, तस्मिन्—उस, पत्तने—नगर में, कश्चिद्—कोई, वणिक् पुत्रः—बनिये का पुत्र, मृतः—मर गया, तस्य दाहाय—उसके जलाने के लिए, महाजनः—बहुत से लोग, गतोऽभूत्—जा रहे थे, ततः—तब, चतुर्णाम्—चारों के, मध्यात्—बीच से, एकेन—एक ने, पुस्तकमवलोकितम्—पुस्तक देखी, महाजनः—जन समूह, येन गतः—जिस मार्ग से जाए, स पन्थाः—वह मार्ग है, (अर्थात् महाजन जिस मार्ग से जाएं उसी से जाना चाहिए।) तन्महाजनमार्गेण—तब महाजनों वाले मार्ग से, गच्छामः—जाते हैं।

अथ—तदनन्तर, ते—वे, पण्डिताः—पण्डित, यावन्महाजनमेलापकेन सह—जब महाजनों के समूह के साथ (अर्थात् जिस मार्ग से महाजन गए थे उसी मार्ग से), यान्ति—जाते हैं, तावद्—तब, कश्चित्—कोई, रासभः—गदहा, श्मशाने दृष्टः—श्मशान में देखा, अथ—उसके बाद, द्वितीयेन—दूसरे ने, पुस्तकमुद्घाट्य—खोलकर, अवलोकितम्—देखा—

उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥४१॥

उत्सवे—उत्सव के समय, व्यसने—दुःख में, दुर्भिक्षे—दुर्भिक्ष में (अकाल के समय), शत्रुसंकटे—शत्रुओं से घिर जाने पर, राजद्वारे—राजद्वार में, श्मशाने च—और श्मशान में, यस्तिष्ठति—जो व्यक्ति ठहरता है, (अर्थात् मिलता है) सः—वह, बान्धवः—बन्धु होता है (अर्थात् उसे बन्धु तुल्य समझना चाहिए)।

तदहो! अयमस्मदीयो बान्धवः। ततः कश्चित्तस्य ग्रीवायां लगति, पादौ प्रक्षालयति।

अथ यावत्ते पण्डिताः दिशामवलोकनं कुर्वन्ति तावत्कश्चिदुष्ट्रो दृष्टः। तैश्चोक्तम्—'एतत्किम् ?'

तावत्तृतीयेन पुस्तकमुद्घाट्योक्तम्—"धर्मस्य त्वरिता गतिः। तन्नूनमेष धर्मस्तावत्।"

चतुर्थेनोक्तम्—"इष्टं धर्मेण योजयेत्"।

अथ तैश्च रासभ उष्ट्रग्रीवायां बद्धः। तत्तु केनचित्तत्स्वामिनो रजकस्याग्रे कथितम्। यावद्रजकस्तेषां मूर्खपण्डितानां प्रहारकरणाय समायातस्तावत्ते प्रनष्टाः।

तदहो—अरे तब, अयम्—यह गदहा, अस्मदीयः—हमारा, बान्धवः—बन्धु है, ततः—तब, कश्चित्तस्य—कोई उसके, ग्रीवायाम्—गले, लगति—लगने लगा (कोई), पादौ—चरणों को, प्रक्षालयति—धोने लगा।

अथ—तदनन्तर, यवात्ते पण्डिताः—जब उन पण्डितों ने, दिशामवलोकनं कुर्वन्ति—दूसरी दिशा में देखा, तावत्—तब, कश्चिद्—कोई, उष्ट्रः—ऊँट, दृष्टः—दिखाई दिया, तैश्चोक्तम्—उन्होंने कहा, एतत्किम्—यह क्या है ?

तावत्—तब, तृतीयेन—तीसरे ने, पुस्तकम्—पुस्तक, उद्घाट्य—खोलकर, उक्तम्—कहा, धर्मस्य—धर्म की, गतिः—गति, त्वरिता—तीव्र होती है, तन्नूनम्—तब निश्चित रूप से, एष—यह, तावत्—तब, धर्मः—धर्म है।

चतुर्थेनोक्तम्—चौथे ने कहा, इष्टम्—इष्ट को (मित्र को), धर्मेण—धर्म के साथ, योजयेत्—जोड़ना चाहिए, तैश्च—और उन्होंने, अथ—तदनन्तर, रासभः—गदहा, उष्ट्रग्रीवायां—ऊँट की गर्दन से, बद्धः—बाँध दिया, तत्तु—यह वृत्तान्त, केनचित्—किसी ने, तत्स्वामिनः—उसके (गदहे के), स्वामिनः—स्वामी धोबी के, अग्रे—सामने, कथितम्—कह दिया, यावत्—जब तक, रजकः—धोबी, तेषाम्—उन, मूर्खपण्डितानाम्—मूर्ख पण्डितों को, प्रहारकरणाय—मारनेके लिए, समायातः—आया, तावत्—तब तक, ते—वे, प्रनष्टाः—चले गए।

ततो यावदग्रे किञ्चित्स्तोकं मार्गं यान्ति तावत्काचिन्नदी समासादिता। तस्य जलमध्ये पलाशपत्रमायातं दृष्ट्वा पण्डितेनैकेनोक्तम्—

"आगमिष्यति यत्पत्रं तदस्मांस्तारयिष्यति।"

एतत्कथयित्वा तत्पत्रस्योपरि पतितो यावन्नद्या नीयते तावत्तं नीयमानमवलोक्याऽन्येन पण्डितेन केशान्तं गृहीत्वोक्तम्—

ततः—तदनन्तर, यावदग्रे—जब आगे, किञ्चित्—कुछ, स्तोकम्—थोड़ा, मार्गम्—मार्ग, यान्ति—गए, तावत्—तब, काचित्—कोई, नदी—नदी, समासादिता—मिली, तस्य—उसके, जलमध्ये—जल में, पलाशपत्रम्—पलाश के पत्ते को, आयातम्—आया हुआ, दृष्ट्वा—देखकर, पण्डितेनैकेन—एक पण्डित ने, उक्तम्—कहा—

यत्—जो, पत्रम्—पत्ता, आगमिष्यति—आएगा, तद्—वह, अस्मान्—हमें, तारयिष्यति—पार कर देगा (अर्थात् नदी के दूसरे किनारे ले जाएगा)।

एतत्कथयित्वा—ऐसा कहकर, तत्—वह, पत्रस्योपरि—पत्ते के ऊपर, पतितः—गिर पड़ा, यावत्—जब तक, नद्या—नदी के द्वारा, नीयते—ले जाया जाने लगा (अर्थात् जब वह नदी में बहने लगा), तावत्—तब, तम्—उसे, नीयमानमवलोक्य—जाते हुए देखकर, अन्येन—दूसरे, पण्डितेन—पण्डित ने, केशान्तम्—केशों को, गृहीत्वा—लेकर, उक्तम्—कहा—

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः।
अर्धेन कुरुते कार्यं, सर्वनाशो हि दुःसहः॥४२॥

पण्डितः—विद्वान्, सर्वनाशे समुत्पन्ने—सर्वनाश का समय आने पर, अर्धम्—आधा, त्यजति—छोड़ देता है (वह), अर्धेन—आधे से, कार्यम्—कार्य को, कुरुते—

करता है (क्योंकि), सर्वनाशः—सर्वनाश, हि—निश्चित रूप से, दुःसहः—दुःसह होता है।

इत्युक्त्वा तस्य शिरश्छेदो विहितः।

इत्युक्त्वा—ऐसा कहकर, तस्य—उस पण्डित के, शिरच्छेदः विहितः—सिर को काट दिया।

अथ तैश्च पश्चाद् गत्वा कश्चिद्ग्राम आसादितः। तेऽपि ग्रामीणैर्निमन्त्रिताः। पृथग् गृहेषु नीताः। ततः एकस्य सूत्रिका घृतखण्डसंयुता भोजने दत्ता। ततो विचिन्त्य पण्डितेनोक्तं यत्—"दीर्घसूत्री विनश्यति"। एवमुक्त्वा भोजनं परित्यज्य गतः। तथा द्वितीयस्य मण्डका दत्ताः, तेनाऽप्युक्तम्—"अतिविस्तार-विस्तीर्णं तद्भवेन्न चिरायुषम्।"

स च भोजनं त्यक्त्वा गतः। अथ तृतीयस्य वटिका भोजने दत्ता। तत्राऽपि तेन पण्डितेनोक्तम्—"छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति।" एवं ते त्रयोपि पण्डिताः क्षुत्क्षामकण्ठाः, लोकैर्हास्यमानास्ततः स्थानात् स्वदेशं गताः।"

अथ—तदनन्तर, तैश्च—अवशिष्ट तीनों पण्डित, कश्चिद्—किसी, ग्रामः—ग्राम में, आसादितः—पहुँचे,। ग्रामीणैः—ग्रामीणों ने, ते—उन्हें, निमन्त्रिताः—निमन्त्रित किया, पृथक्—अलग-अलग, गृहेषु—घरों में, नीताः—ले गए, ततः—तब, एकस्य—एक को (किसी गृहस्थ ने), घृतखण्डसंयुता—घी, चीनी से युक्त, सूत्रिका—सेवई, भोजने—भोजन में, दत्ता—दीं, ततः—तब, विचिन्त्य—सोचकर, पण्डितेनोक्तम्—पण्डित ने कहा, यत्—कि, दीर्घसूत्री—दीर्घसूत्री व्यक्ति (अर्थात् लम्बे सूतवाली वस्तु को खाने वाला आलसी हो जाता है।) विनश्यति—नष्ट हो जाता है, एवमुक्त्वा—ऐसा कहकर, भोजनम्—भोजन को, त्यज्य—छोड़कर, गतः—चला गया। तथा—और, द्वितीयस्य—दूसरे को, मण्डका—रोटी, दत्ताः—दी, तेनाऽपि—उसने भी, उक्तम्—कहा, अतिविस्तार विस्तीर्णम्—अत्यधिक विस्तार पूर्वक फैली हुई, तद्—वस्तु, चिरायुषम्—चिरस्थायी, न भवेत्—नहीं होती (अर्थात् इसको खाकर मैं अल्पायु हो जाऊंगा)।

स च—और वह, भोजनम्—भोजन को, त्यक्त्वा—छोड़कर, गतः—चला गया। अथ—फिर, तृतीयस्य—तीसरे को, वटिका—वड़ा, भोजने—भोजन में, दत्ता—दिया। तत्राऽपि—वहाँ भी, तेन पण्डितेनोक्तम्—उस पण्डित ने कहा, छिद्रेषु—छिद्रों में, अनर्थाः—आपत्तियां, बहुली—अत्यधिक, भवन्ति—होती हैं (अर्थात् छिद्र सदोष होता है), एवम्—इस प्रकार, ते—वे, त्रयोऽपि पण्डिताः—तीनों पण्डित, क्षुत्क्षाम-कण्ठाः—क्षुधा से शुष्क कण्ठ वाले होकर, (अर्थात् भूखे रहकर) लोकैः—लोगों के द्वारा, हास्यमानाः—हंसी उड़ाए जाते हुए, ततः स्थानात्—उस स्थान से, स्वदेशम्—अपने घर, गताः—चले गए,।

अथ सुवर्णसिद्धिराह—"यत्त्वं लोकव्यवहारमजानन्मया वार्यमाणोऽपि न स्थितः ततं ईदृशीमवस्थामुपगतः। अतोहं ब्रवीमि—"अपि शास्त्रेषु कुशलाः"[1] इति।

तत् श्रुत्वा चक्रधर आहा—अहो, अकारणमेतत् यतोहि—

अथ—इसके अनन्तर, सुवर्णसिद्धिः—सुवर्ण सिद्धि ने, आह—कहा, यत्—जो, त्वम्—तुम, लोकव्यवहारम्—लोक-व्यवहार को, अजानन्—न जानते हुए, मया—मेरे द्वारा, वार्यमाणः—रोके जाते हुए, न स्थितः—नहीं रुके, ततः—तभी, ईदृशीमवस्थामुपगतः—ऐसी स्थिति को प्राप्त हुए हो (अर्थात् चक्र से युक्त मस्तक वाले), अतोऽहम्—अतः मैं, ब्रवीमि—कहता हूँ, शास्त्रेषु—शास्त्रों में, कुशलाः अपि—कुशल भी........., इति।

तत् श्रुत्वा—यह सुनकर, चक्रधर आह—चक्रधर ने कहा, अहो—अरे, अकारणमेतत्—यह अकारण ही है (अर्थात् तुम्हारा कथन युक्तियुक्त नहीं है), यतो हि—क्योंकि—

सुबुद्धयो विनश्यन्ति दुष्टदैवेन नाशिताः।
स्वल्पधीरपि तस्मिंस्तु कुले नन्दति सन्ततम् ॥ ४३ ॥

दुष्टदैवेन—भाग्य के प्रतिकूल होने से, नाशिताः—नाश किए हुए, सुबुद्धयः—बुद्धिमान् पुरुष, विनश्यन्ति—नष्ट हो जाते हैं, तस्मिन् तु—उसके (भाग्य के), कुले—अनुकूल होने पर, स्वल्पधीरपि—मन्द बुद्धि भी, सन्ततम्—निरन्तर, नन्दति—प्रसन्न होता है।

भाव—यह सब भाग्य-चक्र है। व्यक्ति कितना ही बुद्धिमान् हो किन्तु यदि भाग्य उसके अनुकूल नहीं है तो वह नष्ट हो जाता है।

उक्तं च—

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः, कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति ॥ ४४ ॥

तथा च—

शतबुद्धिः शिरस्थोऽयं लम्बते च सहस्रधीः।
एकबुद्धिरहं भद्रे ! क्रीडामि विमले जले ॥४५॥

सुवर्णसिद्धिराह—"कथमेतत् ?" स आह—

उक्तं च—कहा भी है, दैवरक्षितम्—भाग्य द्वारा रक्षित (प्राणी), अरक्षितम्—न रक्षा किया गया भी, तिष्ठति—बचा रहता है, सुरक्षितम्—सुरक्षित (किन्तु), दैवहतम्—भाग्य से प्रताड़ित हुआ (प्राणी), विनश्यति—नष्ट हो जाता है (अर्थात् सुरक्षित प्राणी भी नष्ट हो जाता है), वने—वन में, विसर्जितः—छोड़ा गया, अनाथोऽपि—

---

१. अपि शास्त्रेषु कुशला लोकाचारविवर्जिताः।
सर्वे ते हास्यतां यान्ति यथा ते मूर्खपण्डिताः ॥
दे० श्लोक ४०

अनाथ भी (अनाथ बच्चा भी), जीवति—जीवित रहता है, गृहे—घर में, कृतप्रयत्नोऽपि—जिसके लिए प्रयत्न किया गया है, न जीवति—जीवित नहीं रहता।

भाव—कितनी भी बाधाएँ क्यों न हों यदि भाग्य अनुकूल है तो व्यक्ति सुरक्षित रहता है किन्तु भाग्य के प्रतिकूल होने पर समस्त सुख सुविधाएं होने पर भी व्यक्ति को नष्ट होने से नहीं बचाया जा सकता।

तथा च—और भी—

अयम्—यह, शतबुद्धिः—शतबुद्धि नामक मत्स्य, शिरस्थः—(धीवर के) मस्तक पर है, सहस्रधीः—सहस्रबुद्धि, लम्बते—लटक रहा है (परन्तु), अहम्—मैं, एकबुद्धिः—एकबुद्धि, विमले जले—स्वच्छ पानी में, क्रीडामि—खेल रहा हूँ।

सुवर्णसिद्धिराह—सुवर्णसिद्धि ने कहा, कथमेतत—यह कैसे ?

स आह—उसने (चक्रधर ने) कहा—

मत्स्यमण्डूक-कथा

"कस्मिंश्चिज्जलाशये शतबुद्धिः सहस्रबुद्धिश्च द्वौ मत्स्यौ निवसतः स्म। अथ तयोरेकबुद्धिर्नाम मण्डूको मित्रतां गतः। एवं ते त्रयोऽपि जलतीरे वेलायां कञ्चित्कालं सुभाषितगोष्ठीसुखमनुभूय, भूयोऽपि सलिलं प्रविशन्ति।

कस्मिंश्चित्—किसी, जलाशये—जलाशय में, शतबुद्धिः सहस्रबुद्धिः च—शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि नाम की, द्वौ—दो, मत्स्यौ—मछलियाँ, निवसतः स्म—रहती थीं, अथ—इसके अनन्तर, तयोः—उन दोनों मछलियों की, एकबुद्धिर्नाम—एकबुद्धि नाम के, मण्डूकः—मेंढक से, मित्रतां गतः—मित्रता हो गई, एवम्—इस प्रकार, ते—वे, त्रयोऽपि—तीनों, जलतीरे—जलाशय के किनारे, वेलायाम्—समय-समय पर कञ्चित्कालम्—कुछ समय, सुभाषितगोष्ठीसुखम्—सुभाषितगोष्ठी का आनन्द (अच्छी-अच्छी बातें करना सुभाषित गोष्ठी है), अनुभूय—अनुभव करके, भूयोऽपि—फिर, सलिलम्—जल में, प्रविशन्ति—प्रवेश कर जाते थे।

अथ कदाचित्तेषां गोष्ठीगतानां जालहस्ता धीवराः प्रभूतैर्मत्स्यैर्व्यापादितैर्मस्तके विधृतैरस्तमनवेलायां तस्मिञ्जलाशये समायाताः। ततः सलिलाशयं दृष्ट्वा मिथः प्रोचुः—"अहो। बहुमत्स्योऽयं ह्रदो दृश्यते, स्वल्पसलिलश्च। तत्प्रभातेऽत्रागमिष्यामः" एवमुक्त्वा स्वगृहं गताः।

अथ—इसके अनन्तर, कदाचित्—कभी, तेषाम्—उनके (मछलियों एवं मण्डूक के), गोष्ठीगतानाम्—गोष्ठी के समय, जालहस्ताः—हाथ में जाल लिए हुए, धीवराः—केवट, व्यापादितैः—मारी हुई, प्रभूतैर्मत्स्यैः—अनेक मछलियों को, मस्तके विधृतैः—मस्तक पर रखे हुए, तस्मिन्—उस, जलाशये—जलाशय में, समायाताः—आ गए, ततः—तब, सलिलाशयम्—तालाब को, दृष्ट्वा—देखकर, प्रोचुः—बोले, अहो—अरे, अयं ह्रदः—यह तालाब, बहुमत्स्यः—बहुत मछलियों से युक्त, दृश्यते—दिखाई देता है, स्वल्पसलिलश्च—और थोड़ा पानी है, तत्प्रभाते—तब सुबह, अत्रागमिष्यामः—यहाँ आएंगे, एवम्—इस प्रकार, उक्त्वा—कहकर, स्वगृहम्—अपने घर, गताः—चले गए।

मत्स्याश्च विषण्णवदना मिथो मन्त्रं चक्रुः। ततो मण्डूक आह—"भोः, शतबुद्धे! श्रुतं धीवरोक्तं भवता? तत्किमत्र युज्यते कर्तुम्, पलायनमवष्टम्भो वा? यत्कर्तुं युक्तं भवति तदादिश्यतामद्य।"

मत्स्याश्च—और मछलियों ने (उन केवटों के घर चले जाने पर), विषण्णवदनाः—खिन्न मुख होकर, मिथः—आपस में, मन्त्रम्—मन्त्रणा, चक्रुः—की, ततः—तब, मण्डूकः—मेंढक ने, आह—कहा, भोः—अरे, शतबुद्धे—शतबुद्धि, भवता—क्या आपने, धीवरोक्तम्—धीवरों का वचन, श्रुतम्—सुना है?, तत्—तब, किमत्र कर्तुम्—क्या करना, युज्यते—ठीक है, पलायनम्—भागना, अवष्टम्भः वा—

अथवा ठहरना, यत्—जो, कर्तुम् युक्तम् भवति—करना ठीक है, तद्—वह, अद्य—आज, आदिश्यताम्=आदेश करो।

तत् श्रुत्वा सहस्रबुद्धिः प्रहस्य आह—"भो मित्र ! मा भैषीः, तयोः वचनश्रवण—मात्रादेव भयं कार्यम् ? न भेतव्यम्।" उक्तं च—

तत्—उसे, श्रुत्वा—सुनकर, सहस्रबुद्धिः—सहस्र बुद्धि ने, प्रहस्य आह—हंसकर कहा, भो—अरे, मित्र—दोस्त, मा भैषीः—डरो मत, तयोः—उनके (केवटों के), वचनश्रवणमात्रादेव—वार्तालाप को सुनने मात्र से ही, भयम्—भय, कार्यम्—करना चाहिए क्या ? (अर्थात् बातचीत को सुनने मात्र से ही नहीं डरना चाहिए), न भेतव्यम्—डरना नहीं चाहिए, उक्तं च—और कहा भी है—

सर्पाणां च खलानां च सर्वेषां दुष्टचेतसाम्।
अभिप्राया न सिद्धयन्ति तेनेदं वर्तते जगत् ॥४६॥

सर्पाणाम्—सर्पों, खलानाम्—दुष्टों, च—और, सर्वेषाम्—सभी, दुष्टचेतसाम्—दुष्ट चित्त वालों के, अभिप्रायाः—मनोरथ, न सिद्धयन्ति—सफल नहीं होते, तेनेदम्—इससे ही यह, जगत्—संसार, वर्तते—चलता है।

भाव—दुष्ट लोगों के मनोरथ प्रायः सफल नहीं होते, यदि समस्त मनोरथ सफल होने लगें तो संसार नष्ट हो जाए ! विश्व की सत्ता इस बात की प्रमाण है कि उनके सभी मनोरथ पूर्ण नहीं होते।

तत्तावत्तेषामागमनमपि न संपत्स्यते। भविष्यति वा तर्हि त्वां बुद्धिप्रभावेणात्म-सहितं रक्षयिष्यामि। यतोऽनेकां सलिलचर्यामहं जानामि।

तदाकर्ण्य शतबुद्धिराह—भोः युक्तमुक्तं भवता। सहस्रबुद्धिरेव भवान्। अथवा साध्विदमुच्यते—

तत्—इसलिए, तावत्तेषाम्—उन धीवरों का, आगमनमपि—आना भी, न संपत्स्यते—नहीं होगा, भविष्यति वा—अथवा होगा, तर्हि—तब, बुद्धिप्रभावेण—अपनी बुद्धि के प्रभाव से, आत्मसहितम्—अपने साथ, त्वाम्—तुम्हारी, रक्षयिष्यामि—रक्षा करूंगा, यतः—क्योंकि, अहम्—मैं, अनेकाम्—अनेक, सलिलचर्याम्—जल में चलने की क्रियाएं, जानामि—जानता हूं।

तदाकर्ण्य—उसे सुनकर, शतबुद्धिः—शतबुद्धि ने, आह—कहा, भोः—अरे !, भवता—आपने, युक्तमुक्तम्—ठीक ही कहा है, भवान्—आप, सहस्रबुद्धिरेव—सहस्र बुद्धि ही हैं (अर्थात् बुद्धि के अनुरूप ही नाम है), अथवा—अथवा, साध्विदमुच्यते—ठीक ही कहा गया है—

बुद्धेर्बुद्धिमतां लोके नाऽस्त्यगम्यं हि किंचन।
बुद्धया यतो हता नन्दाश्चाणक्येनाऽसिपाणयः ॥४७॥

लोके—संसार में, बुद्धिमताम्—बुद्धिमानों की, बुद्धेः—बुद्धि से, किञ्चन—कुछ भी, अगम्यम्—दुर्गम अथवा असाध्य, नास्ति—नहीं है, यतः—क्योंकि, चाणक्येन

—चाणक्य ने, बुद्ध्या—बुद्धि से, असिपाणयः—शस्त्र-युक्त, नन्दाः—नन्दों का, हताः—विनाश किया था।

भाव—बुद्धि युक्त के लिए कुछ भी असाध्य नहीं होता। चाणक्य जैसे एक सामान्य से ब्राह्मण ने अपनी बुद्धि की शक्ति से ही अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सम्पूर्ण नंद-वंश को नष्ट कर दिया था। कहा भी है—'यस्य बुद्धिर्बलं तस्य' अर्थात् जिसके पास बुद्धि है उसी के पास बल है।

तथा च—

न यत्राऽस्ति गतिर्वायो रश्मीनां च विवस्वतः।
तत्राऽपि प्रविशत्याशु बुद्धिर्बुद्धिमतां सदा ॥४८॥

तथा च—और भी—

यत्र—जहाँ, वायोः—वायु का, विवस्वतः—सूर्य की, रश्मीनाम्—किरणों का, गतिः—प्रवेश, न—नहीं, अस्ति—है, तत्रापि—वहाँ भी, बुद्धिमताम्—बुद्धिमानों की, बुद्धिः—बुद्धि, सदा—हमेशा, आशु—शीघ्र, प्रविशति—प्रवेश करती है।

भाव—जहाँ वायु एवं सूर्य की किरणों का भी प्रवेश नहीं होता वहाँ भी बुद्धि-मानों की बुद्धि तुरन्त प्रवेश कर जाती है। अर्थात् बुद्धि उनसे भी सूक्ष्म है।

ततो वचनश्रवणमात्रादपि पितृपर्यायागतं जन्मस्थानं त्युक्तं न शक्यते।

उक्तं च—

न तत्स्वर्गेऽपि सौख्यं स्याद्दिव्यस्पर्शेन शोभने।
कुस्थानेऽपि भवेत्पुंसां जन्मनो यत्र संभवः ॥४९॥

ततः=तब, वचनश्रवणमात्राद्—(केवटों के) वार्तालाप श्रवण मात्र से ही, पितृपर्यायागतम्—पूर्व परंपरा से आगत, जन्मस्थानम्—जन्मस्थान, त्यक्तुम्—छोड़ना न शक्यते—ठीक नहीं है। उक्तं च—और कहा भी है—

शोभने—रमणीय, स्वर्गेऽपि—स्वर्ग में, दिव्यस्पर्शेन—देवाङ्गनाओं के स्पर्श से, तत्सौख्यम्—वह सुख, न—नहीं, स्यात्—होता है, यत्—जो, पुंसां—मनुष्यों को, जन्मनः संभवः—जन्मस्थान में मिलता है, कुस्थानेऽपि भवेत्—कष्टप्रद स्थान ही क्यों न हो।

भाव—अपने जन्मस्थान से व्यक्ति को स्वाभाविक लगाव होता है। वह स्थान कितना ही बुरा अथवा कष्टप्रद क्यों न हो किन्तु व्यक्ति उसे छोड़ना नहीं चाहता। उस स्थान के समक्ष स्वर्गिक आनन्द भी तुच्छ प्रतीत होते हैं।

तन्न कदाचिदपि गन्तव्यम्। अहं त्वां बुद्धिप्रभावेण रक्षयिष्यामि।

मण्डूक आह—"भद्रौ! मम तावदेकैव बुद्धिः पलायनपरा। तदहमन्यं जलाशयम-द्यैव सभार्यो यास्यामि।" एवमुक्त्वा स मण्डूको रात्रावेवाऽन्यजलाशयं गतः।

तन्न—तब नहीं, कदाचिदपि—कभी भी, गन्तव्यम्—जाना चाहिए। अहम्—मैं, बुद्धिप्रभावेण—बुद्धि के प्रभाव से, त्वाम्—तुम्हारी, रक्षयिष्यामि—रक्षा करूंगा।

मण्डूक आह—मेंढक बोला, भद्रौ—श्रेष्ठ पुरुषों! मम=मेरी, तावद्—तव, एकैव—एक ही, बुद्धिः—बुद्धि है, पालायनपरा—भाग जाना चाहिए, तदहम्—तव मैं, अन्यं जलाशयम्—दूसरे जलाशय में, अद्यैव—आज ही, सभार्यः—पत्नी सहित,यास्यामि—चला जाऊंगा, एवमुक्त्वा—इस प्रकार कहकर, स मण्डूकः—वह मेंढक, रात्रावेव—रात्रि में ही, अन्यजलाशयम्—दूसरे जलाशय में, गतः—चला गया।

धीवरैरपि प्रभाते आगत्य, जघन्यमध्यमोत्तमजलचराः मत्स्यकूर्ममण्डूककर्कटादयो गृहीताः। तावपि शतबुद्धिसहस्रबुद्धी सभार्यौ पलायमानौ चिरमात्मानं गतिविशेषविज्ञानैः कुटिलचारेण रक्षन्तौ जाले निपतितौ, व्यापादितौ च।

धीवरैरपि—धीवरों ने भी, प्रभाते—प्रातःकाल आगत्य—आकर, जघन्यमध्यमोत्तमजलचराः—छोटे, मध्यम तथा विशाल जलचरों, मत्स्यकूर्ममण्डूककर्कटादयः—मत्स्य, कछुए, मेंढक, केकड़े आदि को, गृहीताः—पकड़ लिया, तावपि—वे दोनों, शतबुद्धिसहस्रबुद्धी—शतबुद्धि और सहस्र बुद्धि भी, सभार्यौ—अपनी पत्नियों के साथ पलायमानौ—दौड़ते हुए, चिरमात्मानम्—चिरकाल तक, गतिविशेषविज्ञानैः—जलतरण सम्बन्धी अनेक कलाओं की जानकारी के कारण, कुटिलचारेण—कुटिल गमन द्वारा, रक्षन्तौ—रक्षा करते हुए, जाले—जाल में, निपतितौ—गिर गए, व्यापादितौ च और मारे गए।

अथाऽपराह्नसमये प्रहृष्टास्ते धीवराः स्वगृहं प्रति प्रस्थिताः। गुरुत्वाच्चैकेन शतबुद्धिः स्कन्धे कृतः। सहस्त्रबुद्धि प्रलम्बमानो नीयते। ततश्च वापीकण्ठोपगतेन मण्डूकेन तौ तथा नीयमानौ दृष्ट्वा अभिहिता स्वपत्नी—"प्रिये! पश्य पश्य—

अथाऽपराह्नसमये—इसके अनन्तर, अपराह्नसमये—दिवावसान के समय, प्रहृष्टास्ते—प्रसन्न होते हुए वे (धीवर) स्वगृहं प्रति—अपने घर की ओर, प्रस्थिताः—चलने लगे, गुरुत्वाच्चैकेन—भारी होने के कारण एक धीवर ने, शतबुद्धिः—शतबुद्धि को स्कन्धे—कन्धे पर, कृतः—रख लिया, सहस्रबुद्धिः—सहस्रबुद्धि, प्रलम्बमानः—लटकता हुआ, नीयते—ले जाया गया, ततश्च—और तब, वापीकण्ठोपगतेन—वापी के तट पर बैठे हुए,मण्डूकेन—मेंढक ने, तौ—उन दोनों (शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि को) तथा—उस प्रकार, नीयमानौ—ले जाया जाता हुआ, दृष्ट्वा—देखकर, अभिहिता स्वपत्नी—अपनी पत्नी से कहा—प्रिये! पश्य-पश्य—देखो-देखो—

शतबुद्धिः शिरस्थोऽयं, लम्बते च सहस्त्रधीः।
एकबुद्धिरहं भद्रे! क्रीडामि विमले जले ॥५०॥

अतश्च "वरं बुद्धिर्न सा विद्या" यद्भवतोक्तं तत्रेयं मे मतिर्यत् न एकान्तेन बुद्धिरपि प्रमाणम्।"

अयम्—यह, शतबुद्धिः—शतबुद्धि, शिरस्थः—सिर पर है, च—और, सहस्रधीः—सहस्रबुद्धि, लम्बते—लटक रहा है, भद्रे—कल्याणि!, एकबुद्धिरहम्—मैं एक बुद्धि, विमले जले—स्वच्छ जल में, क्रीडामि—खेल रहा हूँ।

भाव—जो व्यक्ति अपनी बुद्धि पर अत्यधिक अहंकार करता है और समयोचित व्यवहार नहीं करता उसकी वही स्थिति होती है जो शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि की हुई।

अतश्च—और इसलिए, वरम्—श्रेष्ठ है, बुद्धिः—बुद्धि, सा—वह, विद्या—विद्या, न—नहीं, यद्—जो, भवतोक्तम्—आपने कहा है, तत्रेयम्—उस विषय में यह, मे—मेरी, मतिः—बुद्धि है, यत्—कि, एकान्तेन—अकेली, बुद्धिरपि—बुद्धि भी, प्रमाणम् न—प्रमाण नहीं है।

सुवर्णसिद्धिः प्राह—यद्यप्येतदस्ति, तथाऽपि मित्रवचनं न लंघनीयम्। परं किं क्रियते, निवारितोऽपि मया न स्थितोऽसि, अतिलौल्यात् विद्याहङ्कराच्च। अथवा साध्विदमुच्यते—

सुवर्णसिद्धिः—सुवर्ण सिद्धि ने, प्राह—कहा, यद्यपि—यद्यपि, एतदस्ति—ऐसा है, तथाऽपि—फिर भी, मित्रवचनम्—मित्रों की बात का, न लंघनीयम्—उल्लंघन नहीं करना चाहिए, परम्—किन्तु, किं क्रियते—क्या किया जाए, निवारितोऽपि—रोके जाते हुए भी, मया—मेरे द्वारा, न स्थितोऽसि—ठहरे नहीं, अतिलौल्यात्—अत्यधिक लालच से, विद्याहङ्काराच्च—और विद्या के अहंकार से, अथवा—अथवा, साध्विदमुच्यते—ठीक ही कहा है—

> साधु मातुल! गीतेन, मया प्रोक्तोऽपि न स्थितः।
> अपूर्वोऽयं मणिर्बद्धः सम्प्राप्तं गीतलक्षणम्॥५१॥

मातुल—मातुल! गीतेन—गीत, साधु—मत गाओ, मया प्रोक्तोऽपि—मेरे कहने पर भी, न स्थितः—तुम नहीं रुके (गाना बन्द नहीं किया), अपूर्वोऽयम्—यह अद्भुत, मणिः—रत्न, बद्धः—बांध दिया गया है, गीतलक्षणम्—गीत का पुरस्कार (यह ओखली-रूप रत्न तुम्हारे गले में बांध दिया है), सम्प्राप्तम्—तुमको मिल गया है।

चक्रधर आह—"कथमेतत्?" सोऽब्रवीत्—

चक्रधर आह—चक्रधर ने कहा, कथमेतत्—यह कैसे? सः—वह (सुवर्णसिद्धि), अब्रवीत्—बोला—

रासभ और शृगाल दोनों मित्र थे। वे दोनों रात्रि में ककड़ी के खेत में घुसकर ककड़ियाँ खा लिया करते थे। एक दिन गदहे ने गीत गाने की इच्छा प्रकट की। शृगाल

---

१. दे० श्लोक ५१।

ने उसे समझाया कि चोर-कर्म करते हुए चुप रहना चाहिए, तुम्हारा स्वर भी मधुर नहीं है अतः गाना मत गाओ। रासभ ने उसकी बात नहीं मानी और अपना राग अलापना शुरू कर दिया। शृगाल क्षेत्रपाल के जगने के भय से बाहर खड़ा हो गया। रासभ का राग सुनकर क्रोधित हुए क्षेत्रपाल ने डण्डे से उसको पीटकर उसके गले में सछिद्र उलूखल को लाकर बांध दिया। रासभ को इस रूप में देखकर शृगाल ने कहा—साधु मातुल··· गीतलक्षणम् ?

भाव—मित्र का कहना मानने में कल्याण होता है अतः उसका उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

सन्धि-नियम

सन्धि शब्द का अभिप्राय है—दो वर्णों का अति समीप आ जाना। दो वर्ण जब पास-पास आते हैं तो एक दूसरे की निकटता के कारण पहले शब्द के अन्तिम वर्ण में अथवा दूसरे शब्द के प्रथम वर्ण में अथवा दोनों में कुछ परिवर्तन हो जाता है। संस्कृत-भाषा में इस परिवर्तन को 'सन्धि' कहते हैं। यह परिवर्तन इतना स्वाभाविक है कि साधारण वक्ता को इसका ज्ञान तक नहीं हो पाता। वोलचाल की समस्त भाषाओं में यह परिवर्तन होता है। उदाहरणतः—हिन्दी भाषा को लेते हैं। जब हम संभल-संभल कर वोलते हैं तो कहते हैं—सब ही, अब ही, पहुंच जाऊँगा। किन्तु इन्हीं वाक्यों को यदि वहुत जल्दी में वोलें तो उच्चारण इस प्रकार होगा—सभी, अभी; पहुंज् जाऊँगा (अथवा पौंज् जाऊँगा)। यह परिवर्तन इतना सहज होता है कि ध्यान पूर्वक सुनने पर ही व्यक्ति उसे जान पाता है। संस्कृत-भाषा में इस प्रकार के परिवर्तन को 'सन्धि' कहते हैं। सन्धि का साधारण अर्थ है 'मेल'। दो वर्णों के निकट आने से मेल उत्पन्न होता है, उसे, इसलिए सन्धि कहते हैं। जिन वर्णों में सन्धि होती है वह वर्णमाला निम्नलिखित है—

स्वर—स्वर का अर्थ है ऐसा वर्ण जिसका उच्चारण अपने आप हो सके अर्थात् जिसको अन्य किसी वर्ण से मिलने की अपेक्षा न हो। स्वर तीन प्रकार के हैं—

ह्रस्व—अ, इ, उ, ऋ, ऌ

दीर्घ—आ, ई, ऊ, ॠ

मिश्रित दीर्घ—ए, ऐ, ओ, औ ये मिश्रित स्वर दीर्घ ही होते हैं और ये किन्हीं दो भिन्न स्वरों के मिश्रण-विशेष से वनता है।

जैसे—अ+इ=ए, अ+ई=ऐ, अ+उ=ओ, अ+ऊ=औ।

व्यञ्जन—ऐसे वर्ण जिनका विना किसी स्वर-वर्ण से मिले हुए उच्चारण नहीं हो सकता व्यञ्जन कहलाते हैं। ये व्यंजन निम्न हैं—

क-वर्ग—क, ख, ग, घ, ङ

च-वर्ग—च, छ, ज, झ, ञ

ट-वर्ग—ट; ठ, ड, ढ, ण

त-वर्ग—त, थ, द, ध, न

प-वर्ग—प, फ, व, भ, म

अन्तःस्थ—य, र, ल, व

ऊष्म वर्ण—श, ष, स, ह

उपर्युक्त क से लेकर ह तक सारे वर्ण व्यञ्जन हैं। क, च, ट, त, प के आगे वर्ग शब्द जोड़ने से अपने विभाग के पाँच अक्षरों का बोध कराते हैं। जैसे—कवर्ग कहने से क, ख, ग, घ, ङ का ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग अपने वर्ग के पाँचों अक्षरों का बोध कराते हैं।

इन सभी उपरिलिखित व्यञ्जनों में 'अ' स्वर मिला है। इन व्यञ्जनों के स्वर विहीन शुद्ध रूप को प्रकट करने के लिए इनके नीचे तिरछी रेखा (्) लगा देते हैं, यथा क्, ग्, भ्, म्, त्, न्। इसे हल्-चिह्न कहते हैं। किसी व्यञ्जन के साथ अ लगाने पर उसके बाद का हल् का चिह्न हट जाता है। जैसे—क्+अ=क। अन्य स्वरों का व्यञ्जन के बाद लगने पर यह स्वरूप होता है—क्+आ=का क्+इ=कि, क्+ई=की, क्+उ=कु, क्+ऊ=कू, क्+ऋ=कृ, क्+ॠ=कॄ, क्+ॢ=क्लृ, क्+ए=के, क्+ऐ=कै, क्+ओ=को, क्+औ=कौ।

उपर्युक्त वर्णों के अतिरिक्त संस्कृत में दो नासिक्य ध्वनियाँ हैं—

अनुस्वार—इसका संकेत(ं)के द्वारा किया जाता है। यह उस अक्षर के ऊपर बिन्दु के रूप में रखा जाता है जिसके बाद उसका उच्चारण होता है। जैसे—सं। यहाँ स के बाद अनुस्वार का उच्चारण होगा।

अनुनासिक—इसका संकेत ँ के द्वारा किया जाता है। यह अक्षर के ऊपर अर्धचन्द्र के ऊपर बिन्दु के रूप में रखा जाता है, जिसके बाद इसका उच्चारण होता है। जैसे—सँ।

इनके अतिरिक्त एक श्वासात्मक ध्वनि विसर्ग है। उसे विसर्जनीय भी कहते हैं। इसका संकेत : (विसर्ग) के द्वारा किया जाता है। जिस वर्ण के बाद इसका उच्चारण करना होता है उसके बाद यह दो विन्दु (विसर्ग) लगाये जाते हैं। विसर्ग सदा किसी स्वर के अन्त में आता है। यह स् अथवा र् का एक रूपान्तर मात्र है किन्तु उच्चारण की विशेषता के कारण इसका अस्तित्व पृथक् है। जब किसी शब्द के आगे कोई वर्ण नहीं होता तो स् अथवा र् को विसर्ग हो जाता है।

वर्णमाला में बताए गए समस्त वर्णों में परस्पर मेल से सन्धि होती है। सन्धियाँ तीन प्रकार की हैं—स्वर-सन्धि, व्यञ्जन-सन्धि एवं विसर्ग-सन्धि।

स्वर-सन्धि—स्वरों के परस्पर मेल को स्वर-सन्धि कहते हैं। ये अनेक प्रकार की हैं किन्तु यहाँ पाठ्यक्रम में अपेक्षित सन्धियों को ही दिया जा रहा है—

दीर्घ-सन्धि—ह्रस्व या दीर्घ अ आ इ ई उ ऊ और ऋ ॠ स्वर के अनन्तर सवर्ण (वैसा ही) ह्रस्व अथवा दीर्घ स्वर आ जाएँ तो दोनों को मिलाकर उन्हीं का दीर्घ स्वर होता है। इसे दीर्घ-सन्धि कहते हैं। जैसे—

अ+अ=आ—स्व+अध्याय:=स्वाध्याय:

च+अपरान्=चापरान्।

अ+आ=आ—नष्ट+आत्मन:=नष्टात्मन:।

आ+अ=आ—तथा+अपि=तथापि

आ+आ=आ—यथा+आसन्न=यथासन्न

इ+इ=ई—मुनि+इन्द्र=मुनीन्द्र ।

भविष्यति+इति=भविष्यतीति ।

इ+ई=ई—गिरि+ईश=गिरीश, हरीश ।

ई+इ=ई—मही+इन्द्र=महीन्द्र, सुधीन्द्र ।

ई+ई=ई—लक्ष्मी+ईशः=लक्ष्मीशः, श्रीशः ।

उ+उ=ऊ—भानु+उदयः=भानूदयः ।

उ+ऊ=ऊ=साधु+ऊचुः=साधूचूः ।

ऊ+ऊ=ऊ—चमू+ऊर्जः=चमूर्जः

ऋ+ऋ=ॠ—होतृ+ऋकारः=होतॄकारः

ॠ+ॠ=ॠ—कॄ+ॠकारः=कॄकारः

गुण-सन्धि—यदि अ, आ के वाद इ, ई आएं तो दोनों के स्थान में 'ए' गुण हो जाता है, यथा—

अ+इ=ए—उप+इन्द्रः=उपेन्द्रः । गजेन्द्रः । सुरेन्द्रः ।

अ+ई=ए—गण+ईशः=गणेशः

आ+इ=ए—महा+इन्द्रः=महेन्द्रः

आ+ई=ए—रमा+ईशः=रमेशः

यदि अ, आ के वाद उ या ऊ आएं तो दोनों के स्थान में 'ओ' गुण हो जाता है । यथा—

अ+उ=ओ—हित+उपदेश=हितोपदेश । चन्द्रोदय, सूर्योदय ।

अ+ऊ=ओ—गगन+ऊर्ध्वम्=गगनोर्ध्वम् ।

आ+उ=ओ—गङ्गा+उदकम्=गङ्गोदकम्

आ+ऊ=ओ—मायया+ऊर्जस्वि=माययोर्जस्वि

यदि अ, आ के वाद ऋ या दीर्घ ॠ आवे तो दोनों के स्थान में 'अर्' गुण हो जाता है । यथा—

अ+ऋ=अर्—कृष्ण+ऋद्धिः=कृष्णर्द्धिः

आ+ऋ=अर्—महा+ऋषि=मर्हषि

यदि अ, आ के वाद ॡ आवे तो दोनों के स्थान पर 'अल्' गुण हो जाता है ।यथा—

अ+ॡ=अल्—तव+ॡकारः=तवल्कारः

वृद्धि-सन्धि—जव अ, आ से परे ए, ऐ आएं तो दोनों मिलकर 'ऐ' वृद्धि सन्धि हो जाती है । जैसे—

अ+ए=ऐ—अद्य+एव=अद्यैव

आ+ए=ऐ—तृष्णा+एका=तृष्णैका

अ+ऐ=ऐ—तव+ऐश्वर्यम्=तवैश्वर्यम्

आ+ऐ=ऐ—महा+ऐश्वर्यम्=महैश्वर्यम्

यदि अ, आ से परे ओ, औ हो तो दोनों मिलकर 'औ' वृद्धि सन्धि हो जाती है। जैसे—

अ+ओ=औ—जल+ओघः=जलौघः

आ+ओ=औ—गङ्गा+ओघः=गङ्गौघः

अ+औ=औ—तेन+औत्सुक्यात्=तेनौत्सुक्यात्

आ+औ=औ—महा+औषधम्=महौषधम्।

यण्-सन्धि—यदि इ, ई के बाद कोई असवर्ण (उससे भिन्न) स्वर आए तो इ, ई के स्थान पर य् यण् हो जाता है। यथा—

इ+अ=य—यदि+अपि=यद्यपि

इ+आ=या—इति+आदि=इत्यादि

ई+आ=या—नदी+आगच्छति=नद्यागच्छति

इ+उ=यु—रवि+उदयः=रव्युदयः

यदि उ, ऊ के बाद असवर्ण स्वर आए तो उ, ऊ के स्थान पर व यण् हो जाता है। जैसे—

उ+अ=व—सु+अच्छम्=स्वच्छम्

उ+आ=वा—सु+आगतम्=स्वागतम्

उ+इ=वि—साधु+इदम्=साध्विदम्

ऋ, ॠ के बाद असवर्ण स्वर परे रहते ऋ को र् यण् हो जाता है। जैसे—

ऋ+अ=र्—पितृ+अर्थम्=पित्रर्थम्

ऋ+आ=रा—पितृ+आज्ञा=पित्राज्ञा।

यदि लृ के बाद कोई असवर्ण स्वर आए तो लृ के स्थान में ल् हो जाता है। जैसे—

लृ+आकृतिः=लाकृतिः

अयादि-सन्धि—एक ही पद में ए, ऐ से परे यदि कोई स्वर हो तो ए को अय्, ऐ को आय् आदेश हो जाता है। जैसे—

ए+अ=अय्—ने+अन=नयन

ए+ए=अये—हरे+ए=हरये

ऐ+अ=आय—नै+अकः=नायकः

यदि ओ, औ से परे कोई स्वर हो तो ओ को अव् और औ को आव् हो जाते हैं। जैसे—

ओ+अ=अव—भो+अति=भवति

ओ+ए=अवे—भानो+ए=भानवे

ओ+अ=आव—पो+अक:=पावक:

औ+इ=आवि—नौ+इक:=नाविक:

पदान्त ए, ऐ, ओ, औ के स्थान पर हुए अयादि आदेशों के य्, व् का विकल्प से लोप हो जाता है। य् व् का लोप हो जाने पर फिर सन्धि नहीं होती। यथा—

हरे+इहि=हरयिह।

विकल्प से य् का लोप होने पर दूसरा रूप हर इह बनेगा फिर सन्धि नहीं होगी। ऐसे ही—

विष्णो+इह=विष्णविह, विष्णइह।

तौ+आगतौ=तावागतौ, ता आगतौ

पूर्वरूप-सन्धि—पदान्त ए, ओ से परे यदि ह्रस्व अ होगा तो 'अ' को पूर्वरूप (ए या ओ जैसा रूप) हो जाएगा। अ हटा है, इस बात की सूचनार्थ कभी-कभी ऽ (अवग्रह चिह्न) लगाया जाता है। जैसे—

हरे+अव=हरेऽव

विष्णो+अव=विष्णोऽव

हल्-सन्धि या व्यञ्जन-सन्धि—व्यञ्जनों का व्यञ्जनों के साथ या स्वरों के साथ मेल होना व्यञ्जन-सन्धि कहलाता है।

यद्यपि व्यञ्जन-सन्धि में अनेक नियम हैं किन्तु यहाँ अनुस्वार परसवर्ण अपेक्षित होने के कारण उसका ही स्पष्टीकरण दिया जा रहा है—

म् को अनुस्वार—पदान्त म् को व्यञ्जन परे रहते अनुस्वार होता है। उदाहरण—

रामम्+नमामि=रामं नमामि

अहम्+गच्छामि=अहं गच्छामि

यहाँ रामम् एवं अहम् के 'म्' पदान्त हैं। 'नमामि' के 'न' एवं 'गच्छामि' के 'ग' के व्यञ्जन होने के कारण 'म्' को अनुस्वार हो जाएगा।

अनुस्वार परसवर्ण—अनुस्वार के बाद यदि श, ष, स, ह के अतिरिक्त कोई व्यञ्जन होगा तो अनुस्वार को परसवर्ण (अगले वर्ण के वर्ग का पंचम अक्षर) हो जाएगा। यह नियम शब्द के मध्य में अनिवार्य है और शब्द के अन्त में विकल्प से। जैसे—अन्क्+इत:+अं+क्+इत:=अङ्कित:।

अन्च्+इत:=अञ्चित:

त्वम्+करोपि=त्वं करोपि, त्वङ्करोपि

विसर्ग-सन्धि—स्वर अथवा व्यंजन के परे होने पर विसर्ग में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं। इसे विसर्ग-सन्धि कहते हैं।

विसर्ग को श् ष् स्—यदि विसर्ग के बाद च, छ हों तो विसर्ग को श् हो जाता है। यथा—

पूर्ण:+चन्द्र=पूर्णश्चन्द्र:, रामश्चलति

यदि विसर्ग के परे ट, ठ हों तो विसर्ग को ष हो जाता है। यथा—

रामः+टङ्कारयति=रामस्+टङ्कारयति=रामष्टङ्कारयति।

यदि विसर्ग के परे त, थ हों तो विसर्ग को स् हो जाता है। जैसे—

हरिः+तरति=हरिस्तरति।

विसर्ग को विकल्प से श् स्—यदि विसर्ग से परे श् स् हों तो विसर्ग को विकल्प से श् स् हो जाते हैं। जैसे—

हरिः+शेते=हरिश्शेते, हरिःशेते

सर्पः+सर्पति=सर्पस्सर्पति, सर्पः सर्पति

प्रथमः+सर्गः=प्रथमस्सर्गः, प्रथमः सर्गः

विसर्ग को र्—यदि विसर्ग से पूर्व अ आ को छोड़कर कोई स्वर हो और आगे कोई स्वर या वर्गों के तीसरे चौथे पाँचवें और य, र, व, ह वर्ण हों तो विसर्ग को र् हो जाता है। यथा—

कविः+अहम्=कविरहम्

साधुः+अयम्=साधुरयम्

निः+धनः=निर्धनः

शिशुः+गच्छति=शिशुर्गच्छति

विसर्ग को उ—यदि विसर्ग से पूर्व ह्रस्व अ हो और आगे भी ह्रस्व अ हो तो विसर्ग को उ (ओ) हो जाता है। और अ का पूर्वरूप हो जाता है। यथा—

नरः+अयम्=नरोऽयम्

बालः+अस्ति=बालोऽस्ति

यदि विसर्ग से पूर्व ह्रस्व अ हो और आगे वर्गों के तीसरे, चौथे, पाँचवें, य, र, ल, व, ह वर्ण हों तो विसर्ग को उ (ओ) हो जाता है। यथा—

बालः+गच्छति=बालो गच्छति

नरः+वदति=नरो वदति

मनः+हरः=मनोहरः

विसर्ग का लोप—विसर्ग से पूर्व आ हो और आगे कोई स्वर या वर्गों के तीसरे, चौथे, पाँचवें य, र, ल, व, ह वर्ण हों तो विसर्ग का लोप हो जाता है। यथा—

नराः+आगच्छन्ति=नरा आगच्छन्ति

जनाः+एते=जना एते

बालाः+वदन्ति=बाला वदन्ति

यदि विसर्ग से पूर्व अ हो और आगे ह्रस्व अ को छोड़कर कोई भी स्वर हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है।

नरः+आगच्छति=नर आगच्छति

कृष्णः+आसीत्=कृष्ण आसीत्

सः और एषः के विसर्ग का लोप—सः और एषः के परे ह्रस्व अ को छोड़कर कोई स्वर या व्यञ्जन हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है। यथा—

सः+पठति=स पठति, स चलति आदि।

विसर्ग को ष्—निः दुः आदि उपसर्गों के विसर्ग को ष् हो जाता है। जब क ख प फ परे रहते हैं। यथा—

निः+फलम्=निष्फलम्

दुः+कृतम्=दुष्कृतम्

शब्द-रूप

वर्णों के सार्थक संयोग से शब्द बनते हैं। जैसे—न्+अ+र्+अ=नर—मनुष्य। संस्कृत में शब्द दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे शब्द जिनका रूप वाक्य के और शब्दों के सम्बन्ध से बदलता रहता है। ऐसे शब्दों में 'नाम' अर्थात् संज्ञा[1], सर्वनाम,[2] विशेषण[3] एवं आख्यात अर्थात् क्रिया[4] हैं। दूसरे वे शब्द हैं जिनके रूप सदा एक समान ही रहते हैं। ऐसे शब्दों को अव्यय कहते हैं।

संज्ञा के तीन लिङ्ग होते हैं—पुँल्लिग, स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग।

हिन्दी में केवल दो वचन होते हैं—एक वचन, बहुवचन। किन्तु संस्कृत में इनके अतिरिक्त एक द्विवचन भी होता है जिससे दो का बोध कराया जाता है।

संज्ञा शब्दों के साथ जिन विभक्तियों या कारकों का प्रयोग होता है, वे चिह्नों सहित इस प्रकार हैं—

विभक्ति या कारक और उनके चिह्न

विभक्ति	कारक	चिह्न
प्रथमा	कर्ता	०, ने
द्वितीया	कर्म	०, को
तृतीया	करण	से, के द्वारा
चतुर्थी	सम्प्रदान	को, के लिए
पञ्चमी	अपादान	से (अलग होंने में)
षष्ठी	सम्बन्ध	का, के, की
सप्तमी	अधिकरण	में, पे, पर
सम्बोधन	सम्बोधन	हे, अरे, भो

उपर्युक्त चिह्नों के लिए संस्कृत में प्रत्येक विभक्ति के तीनों वचनों के लिए

---

१. किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा स्थान के नाम को संज्ञा कहते हैं। जैसे—अश्व, राम, ललिता आदि।

२. जो शब्द संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं उन्हें सर्वनाम कहते हैं। जैसे—सः=वह, त्वम्=तू आदि।

३. जो शब्द संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताएं उसे विशेषण कहते हैं। यथा—काला घोड़ा। यहाँ काला विशेषण है।

४. जिस शब्द से किसी कार्य का करना या होना (स्थिति) पाया जाए, उसे क्रिया कहते हैं। यथा—वह हँस रहा है। मैं पढ़ रहा हूं। यहाँ हंसना एवं पढ़ना क्रियाएं हैं।

अलग-अलग चिह्न हैं, इन्हें (प्रत्यय) कहते हैं। ये प्रत्यय शब्दों के साथ लगकर उनके संस्कृत के रूपों की रचना करते हैं। ये प्रत्यय शब्दों के साथ लगकर वदलते भी रहते हैं।

विभक्तियों के प्रत्यय (चिह्न) और अर्थ

विभक्ति	अर्थ	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	ने	सु (:)	औ	जस् (अ:)
द्वितीया	को	अम्	औट् (औ)	शस् (अ:)
तृतीया	से, के द्वारा	टा (आ)	भ्याम्	भिस् (भि:)
चतुर्थी	के लिए	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस् (भ्य:)
पञ्चमी	से	ङसि (अ:)	भ्याम्	भ्यस् (भ्य:)
षष्ठी	का, की, के	ङस् (अ:)	ओस् (ओ:)	आम्
सप्तमी	में, पे, पर	ङि (इ)	ओस् (ओ:)	सुप् (सु)

अकारान्त 'पुंलिंग' शब्द
नर=नर्+अ (मनुष्य)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	नर: (एक मनुष्य)	नरौ (दो मनुष्य)	नरा: (सव मनुष्य)
द्वितीया	नरम् (एक मनुष्य को)	नरौ (दो मनुष्यों को)	नरान् (सव मनुष्यों को)
तृतीया	नरेण (एक मनुष्य से, के द्वारा)	नराभ्याम् (दो मनुष्यों से)	नरै: (सव मनुष्यों से)
चतुर्थी	नराय (एक मनुष्य के लिए)	नराभ्याम् (दो मनुष्यों के लिए)	नरेभ्य: (सव मनुष्यों के लिए)
पञ्चमी	नरात् (एक मनुष्य से)	नराभ्याम् (दो मनुष्यों से)	नरेभ्य: (सव मनुष्यों से)
षष्ठी	नरस्य (एक मनुष्य का, के, की)	नरयो: (दो मनुष्यों का)	नराणाम्(सव मनुष्यों का)
सप्तमी	नरे (एक मनुष्य में, पर)	नरयो: (दो मनुष्यों में)	नरेषु (सव मनुष्यों में)
सम्वोधन	हे नर (हे मनुष्य)	हे नरौ(हे दो मनुष्यो)	हे नरा: (हे सव मनुष्यो)

पार्थ=पार्थ्+अ (अर्जुन)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	पार्थ:	पार्थौ	पार्था:
द्वितीया	पार्थम्	पार्थौ	पार्थान्

तृतीया	पार्थेन	पार्थाभ्याम्	पार्थैः
चतुर्थी	पार्थाय	पार्थाभ्याम्	पार्थेभ्यः
पंचमी	पार्थात्	पार्थाभ्याम्	पार्थेभ्यः
षष्ठी	पार्थस्य	पार्थयोः	पार्थानाम्
सप्तमी	पार्थे	पार्थयोः	पार्थेषु
सम्बोधन	हे पार्थ	हे पार्थौ	हे पार्थाः

सभी अकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप 'नर' के समान ही चलेंगे। अनेक अकारान्त शब्दरूपों में अनेक स्थलों पर न को ण हो जाता है। ऋ, ॠ, र वा ष् के परे यदि अपदान्त न् हो तो उसे ण् हो जाता है। ऋ, ॠ, र् वा ष् और न् के बीच में यदि कोई स्वर, कवर्ग, पवर्ग, य्, व्, ह् भी हो तो भी न् को ण् हो जाएगा। यथा—राम+नाम्=रामाणाम्। यहाँ पर र् के बाद आ, म् और आ का व्यवधान है, तो भी न् को ण् हो गया है। इसी तरह हरीणाम्, नृपाणाम् आदि। पार्थान्, नरान् आदि में न् को ण् नहीं होगा क्योंकि न् पदान्त है।

अकारान्त नपुंसकलिंग—अकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'पुस्तक' आदि शब्दों के रूप प्रायः 'नर' शब्द के समान ही होते हैं, केवल प्रथमा, द्वितीया और सम्बोधन के रूपों में अन्तर होता है—

पुस्तक

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पुस्तकम्	पुस्तके	पुस्तकानि
द्वितीया	पुस्तकम्	पुस्तके	पुस्तकानि
तृतीया	पुस्तकेन	पुस्तकाभ्याम्	पुस्तकैः
चतुर्थी	पुस्तकाय	पुस्तकाभ्याम्	पुस्तकेभ्यः
पञ्चमी	पुस्तकात्	पुस्तकाभ्याम्	पुस्तकेभ्यः
षष्ठी	पुस्तकस्य	पुस्तकयोः	पुस्तकानाम्
सप्तमी	पुस्तके	पुस्तकयोः	पुस्तकेषु
सम्बोधन	हे पुस्तक	हे पुस्तके	हे पुस्तकानि

ज्ञान

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
द्वितीया	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
तृतीया	ज्ञानेन	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानैः
चतुर्थी	ज्ञानाय	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्यः
पञ्चमी	ज्ञानात्	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्यः
षष्ठी	ज्ञानस्य	ज्ञानयोः	ज्ञानानाम्

सप्तमी	ज्ञाने	ज्ञानयोः	ज्ञानेषु
सम्बोधन	हे ज्ञान	हे ज्ञाने	हे ज्ञानानि

सभी अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप पुस्तक की भाँति चलेंगे ।

आकारान्त पुँल्लिग

विश्वपा—संसार का रक्षक

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः
द्वितीया	विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः
तृतीया	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः
चतुर्थी	विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
पञ्चमी	विश्वपः	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
षष्ठी	विश्वपः	विश्वपोः	विश्वपाम्
सप्तमी	विश्वपि	विश्वपोः	विश्वपासु
सम्बोधन	हे विश्वपाः	हे विश्वपौ	हे विश्वपाः

आकान्त पुँलिङ्ग शब्दों के रूप विश्वपाः की भांति ही चलेंगे ।

आकारान्त स्त्रीलिंगशब्द

विद्या

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	विद्या	विद्ये	विद्याः
द्वितीया	विद्याम्	विद्ये	विद्याः
तृतीया	विद्यया	विद्याभ्याम्	विद्याभिः
चतुर्थी	विद्यायै	विद्याभ्याम्	विद्याभ्यः
पंचमी	विद्यायाः	विद्याभ्याम्	विद्याभ्यः
षष्ठी	विद्यायाः	विद्ययोः	विद्यानाम्
सप्तमी	विद्यायाम्	विद्ययोः	विद्यासु
सम्बोधन	हे विद्ये	हे विद्ये	हे विद्याः

गीता

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	गीता	गीते	गीताः
द्वितीया	गीताम्	गीते	गीताः
तृतीया	गीतया	गीताभ्याम्	गीताभिः
चतुर्थी	गीतायै	गीताभ्याम्	गीत.भ्यः
पञ्चमी	गीतायाः	गीताभ्याम्	गीताभ्यः
षष्ठी	गीतायाः	गीतयोः	गीतानाम्

सप्तमी	गीतायाम्	गीतयो:	गीतासु
सम्बोधन	हे गीते	हे गीते	हे गीता:

आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप विद्या की भांति चलेंगे।

इकारान्त पुंल्लिग

कवि

विभक्ति	एकचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	कविः	कवी	कवयः
द्वितीया	कविम्	कवी	कवीन्
तृतीया	कविना	कविभ्याम्	कविभिः
चतुर्थी	कवये	कविभ्याम्	कविभ्यः
पञ्चमी	कवेः	कविभ्याम्	कविभ्यः
षष्ठी	कवेः	कव्योः	कवीनाम्
सप्तमी	कवौ	कव्योः	कविषु
सम्बोधन	हे कवे	हे कवी	हे कवयः

पति—स्वामी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	पतिः	पती	पतयः
द्वितीया	पतिम्	पती	पतीन्
तृतीया	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
चतुर्थी	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पञ्चमी	पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
षष्ठी	पत्युः	पत्योः	पतीनाम्
सप्तमी	पत्यौ	पत्योः	पतिषु
सम्बोधन	हे पते	हे पती	हे पतयः

प्रायः सभी इकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों के रूप कवि एवं पति के समान ही चलते हैं।

इकारान्त स्त्रीलिंग

शुद्धि

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	शुद्धिः	शुद्धी	शुद्धयः
द्वितीया	शुद्धिम्	शुद्धी	शुद्धीः
तृतीया	शुद्ध्या	शुद्धिभ्याम्	शुद्धिभिः
चतुर्थी	शुद्ध्यै, शुद्धये	शुद्धिभ्याम्	शुद्धिभ्यः

पञ्चमी	शुद्धयाः, शुद्धेः	शुद्धिभ्याम्	शुद्धिभ्यः
षष्ठी	शुद्धयाः, शुद्धेः	शुद्धयोः	शुद्धीनाम्
सप्तमी	शुद्धयाम्, शुद्धौ	शुद्धयोः	शुद्धिषु
सम्बोधन	हे शुद्धे	हे शुद्धी	हे शुद्धयः

मति

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मतिः	मती	मतयः
द्वितीया	मतिम्	मती	मतीः
तृतीया	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
चतुर्थी	मत्यै, मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
पञ्चमी	मत्याः मतेः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
षष्ठी	मत्याः मतेः	मत्योः	मतीनाम्
सप्तमी	मत्याम्, मतौ	मत्योः	मतिषु
सम्बोधन	हे मते	हे मती	हे मतयः

समस्त इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप शुद्धि एवं मति की भांति चलेंगे ।

इकारान्त नपुंसकलिंग

वारि—पानी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वितीया	वारि	वारिणी	वारीणि
तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
चतुर्थी	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पञ्चमी	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
षष्ठी	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
सप्तमी	वारिणि	वारिणोः	वारिषु
सम्बोधन	हे वारे, हे वारि	हे वारिणी	हे वारीणि

दधि—दही

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दधि	दधिनी	दधीनि
द्वितीया	दधि	दधिनी	दधीनि
तृतीया	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
चतुर्थी	दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
पञ्चमी	दध्नः	दधिभ्याम्	दधिभ्यः

षष्ठी	दध्नः	दध्नोः	दध्नाम्
सप्तमी	दध्नि, दधनि	दध्नोः	दधिषु
सम्बोधन	हे दधे, हे दधि	हे दधिनी	हे दधीनि

इकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रायः सभी शब्द वारि एवं दधि की भांति चलते हैं।

ईकारान्त पुंल्लिग

सुधी—विद्वान्

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
द्वितीया	सुधियम्	सुधियौ	सुधियः
तृतीया	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
चतुर्थी	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
पञ्चमी	सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
षष्ठी	सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्
सप्तमी	सुधियि	सुधियोः	सुधीषु
सम्बोधन	हे सुधीः	हे सुधियौ	हे सुधियः

सखी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
द्वितीया	सखायम्	सखायौ	सख्यः
तृतीया	सख्या	सखीभ्याम्	सखीभिः
चतुर्थी	सख्ये	सखीभ्याम्	सखीभ्यः
पञ्चमी	सख्युः	सखीभ्याम्	सखीभ्यः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सख्याम्
सप्तमी	सख्यि	सख्योः	सखीषु
सम्बोधन	हे सखीः	हे सखायौ	हे सखायः

ईकारान्त स्त्रीलिंग

नदी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वितीया	नदीम्	नद्यौ	नदीः
तृतीया	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
चतुर्थी	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
पञ्चमी	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः

षष्ठी	नद्याः	नद्यो	नदीनाम्
सप्तमी	नद्याम्	नद्योः	नदीषु
सम्बोधन	हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः

श्री—लक्ष्मी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
द्वितीया	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
तृतीया	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
चतुर्थी	श्रियै, श्रिये	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
पञ्चमी	श्रियाः, श्रियः	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
षष्ठी	श्रियाः, श्रियः	श्रियोः	श्रीणाम्, श्रियाम्
सप्तमी	श्रीयाम्, श्रियि	श्रियोः	श्रीषु
सम्बोधन	हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः

समस्त ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप नदी एवं श्री की भांति चलते हैं।

उकारान्त पुँल्लिग शब्द

भानु—सूर्य

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भानुः	भानू	भानवः
द्वितीया	भानुम्	भानू	भानून्
तृतीया	भानुना	भानुभ्याम्	भानुभिः
चतुर्थी	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
पञ्चमी	भानोः	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
षष्ठी	भानोः	भान्वोः	भानूनाम्
सप्तमी	भानौ	भान्वोः	भानुषु
सम्बोधन	हे भानो	हे भानू	हे भानवः

गुरु

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गुरुः	गुरू	गुरवः
द्वितीया	गुरुम्	गुरू	गुरून्
तृतीया	गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुभिः
चतुर्थी	गुरवे	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः
पञ्चमी	गुरोः	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः

षष्ठी	गुरोः	गुर्वोः	गुरूणाम्
सप्तमी	गुरौ	गुर्वोः	गुरुषु
सम्बोधन	हे गुरो	हे गुरू	हे गुरवः

समस्त उकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप भानु की भांति चलेंगे।

उकारान्त नपुंसकलिंग शब्द

वस्तु—चीज

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि
द्वितीया	वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि
तृतीया	वस्तुना	वस्तुभ्याम्	वस्तुभिः
चतुर्थी	वस्तुने	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्यः
पञ्चमी	वस्तुनः	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्यः
षष्ठी	वस्तुनः	वस्तुनोः	वस्तूनाम्
सप्तमी	वस्तुनि	वस्तुनोः	वस्तुषु
सम्बोधन	हे वस्तो, हे वस्तु	हे वस्तुनी	हे वस्तूनि

उकारान्त विशेषण शब्द

बहु

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	बहु	बहुनी	बहूनि
द्वितीया	बहु	बहुनी	बहूनि
तृतीया	बहुना	बहुभ्याम्	बहुभिः
चतुर्थी	बहवे, बहुने	बहुभ्याम्	बहुभ्यः
पंचमी	बहोः, बहुनः	बहुभ्याम्	बहुभ्यः
षष्ठी	बहोः, बहुनः	बह्वोः, बहुनोः	बहूनाम्
सप्तमी	बहौ, बहुनि	बह्वोः, बहुनोः	बहुषु
सम्बोधन	हे बहो, हे बहु	हे बहुनी	हे बहूनि

सभी उकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्द वस्तु की तरह चलेंगे।

ऊकारान्त पुँल्लिग शब्द

स्वयम्भू—ब्रह्मा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्वयम्भूः	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुवः
द्वितीया	स्वयम्भुवम्	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुवः
तृतीया	स्वयम्भुवा	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभिः

चतुर्थी	स्वयम्भुवे	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभ्यः
पंचमी	स्वयम्भुवः	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभ्यः
षष्ठी	स्वयम्भुवः	स्वयम्भुवोः	स्वयम्भुवाम्
सप्तमी	स्वयम्भुवि	स्वयम्भुवोः	स्वयम्भूषु
सम्बोधन	हे स्वयम्भूः	हे स्वयम्भुवौ	हे स्वयम्भुवः

ऋकारान्त पुंल्लिग

पितृ—पिता

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पिता	पितरौ	पितरः
द्वितीया	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृतीया	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
चतुर्थी	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
पंचमो	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
षष्ठी	पितुः	पित्रोः	पितॄणाम्
सप्तमी	पितरि	पित्रोः	पितृषु
सम्बोधन	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

नृ—मनुष्य

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ना	नरौ	नरः
द्वितीया	नरम्	नरौ	नॄन्
तृतीया	न्ना	नृभ्याम्	नृभिः
चतुर्थी	न्ने	नृभ्याम्	नृभ्यः
पंचमी	नुः	नृभ्याम्	नृभ्यः
षष्ठी	नुः	न्नोः	नृणाम्, नॄणाम्
सप्तमी	नरि	न्नोः	नृषु
सम्बोधन	हे नः	हे नरौ	हे नरः

प्रायः समस्त ऋकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप पितृ एवं नृ की तरह चलते हैं।

ऋकारान्त नपुंसकलिग

कर्तृ, नेतृ, रक्षितृ आदि शब्द विशेषण हैं, इसलिए इनका प्रयोग तीनों लिङ्गों में होता है। यहाँ पर नपुंसकलिङ्ग के रूप दिखाए जा रहे हैं। तृतीया से आगे इनका एक रूप पुंल्लिङ्ग जैसा भी होता है।

कर्तृ—करने वाला

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि
द्वितोया	कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि
तृतीया	कर्त्रा, कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
चतुर्थी	कर्त्रे, कर्तृणे	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
पंचमी	कर्तुः, कर्तृणः	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
षष्ठी	कर्तुः, कर्तृणः	कर्त्रोः, कर्तृणोः	कर्तॄणाम्
सप्तमी	कर्तरि, कर्तृणि	कर्त्रोः, कर्तृणोः	कर्तृषु
सम्बोधन	हे कर्तृ, हे कर्तः	हे कर्तृणी	हे कर्तॄणि

सर्वनाम शब्द—हिन्दी में 'सर्वनाम' शब्द का अर्थ 'किसी संज्ञा के स्थान में आया हुआ शब्द' है। किन्तु संस्कृत में सर्वनाम शब्द से ऐसे ३५ शब्दों का बोध होता है जो 'सर्व' शब्द से आरम्भ होते हैं और जिनके रूप प्रायः एक से चलते हैं। निस्सन्देह इनमें संज्ञा के स्थान में आने वाले सभी सर्वनाम आ जाते हैं। प्रायः सर्वनाम शब्दों का सम्बोधन नहीं होता।

सर्वनाम शब्दों का प्रयोग विशेषण के समान होता है। विशेष्य का जो लिङ्ग, विभक्ति और वचन होता है, सर्वनाम का भी उसी लिंग, विभक्ति और वचन में प्रयोग होता है। जैसे—वह (पुरुष)—'सः', वह (स्त्री)—'सा' और वह (नपुंसक लिङ्ग शब्द)—'तत्'। इसी प्रकार सभी विभक्तियों में कारकों के आधार पर सर्वनाम शब्दों का प्रयोग होता है।

सर्वनाम शब्दों के रूप

'सर्व' शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं। सर्व शब्द अन्य अर्थात् प्रथम पुरुष का वाचक है।

सर्व—सब

पुंल्लिग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पंचमी	सर्वस्मात्, द्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

स्त्रीलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वितीया	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृतीया	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
चतुर्थी	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
पंचमी	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
षष्ठी	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सप्तमी	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु

नपुंसकलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वितीया	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पचमी	सर्वस्मात्, द्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

हिन्दी में 'जो' शब्द सम्बन्ध सूचक है, संस्कृत में इसके लिए 'यत्' शब्द आता है। 'यत्' शब्द प्रथम पुरुष का वाचक है। यत् शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं।

यत्—जो

पुंल्लिग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	यः	यौ	ये
द्वितीया	यम्	यौ	यान्
तृतीया	येन	याभ्याम्	यैः
चतुर्थी	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पंचमी	यस्मात्, द्	याभ्याम्	येभ्यः
षष्ठी	यस्य	ययोः	येषाम्
सप्तमी	यस्मिन्	ययोः	येषु

स्त्रीलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	या	ये	याः
द्वितीया	याम्	ये	याः
तृतीया	यया	याभ्याम्	याभिः
चतुर्थी	यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः
पंचमी	यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
षष्ठी	यस्याः	ययोः	यासाम्
सप्तमी	यस्याम्	ययोः	यासु

नपुंसकलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यत्, द्	ये	यानि
द्वितीया	यत् द्	ये	यानि
तृतीया	येन	याभ्याम्	यैः
चतुर्थी	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पंचमी	यस्मात्, द्	याभ्याम्	येभ्यः
षष्ठी	यस्य	ययोः	येषाम्
सप्तमी	यस्मिन्	ययोः	येषु

तत् शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं। तत् शब्द प्रथम पुरुष का वाचक है।

तत्—वह

पुंल्लिग

विभक्ति	एकवचान	द्विवचान	बहुवचान
प्रथमा	सः	तौ	ते
द्वितीया	तम्	तौ	तान्
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चातुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पंचमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

स्त्रीलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सा	ते	ताः
द्वितीया	ताम्	ते	ताः
तृतीया	तया	ताभ्याम्	ताभिः
चतुर्थी	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
पंचमी	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
षष्ठी	तस्याः	तयोः	तासाम्
सप्तमी	तस्याम्	तयोः	तासु

नपुंसकलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	तत्, द्	ते	तानि
द्वितीया	तत्,, द्	ते	तानि
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पंचमी	तस्मात्, द्	ताभ्याम्	तेभ्यः
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

'एतत्' शब्द का अर्थ है 'यह'। अत्यधिक निकट वस्तु के लिए 'एतत्' का प्रयोग होता है। इसके रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं। 'एतत्' शब्द प्रथम पुरुष का वाचक है।

एतत्—यह

पुंल्लिग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एषः	एतौ	एते
द्वितीया	एतम्, एनम्	एतौ, एनौ	एतान्, एनान्
तृतीया	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः
चतुर्थी	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पंचमी	एतस्मात्, द्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
षष्ठी	एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्
सप्तमी	एतस्मिन्	एतयोः, एनयोः	एतेषु

स्त्रीलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एषा	एते	एताः
द्वितीया	एताम्, एनाम्	एते, एने	एताः, एनाः
तृतीया	एतया, एनया	एताभ्याम्	एताभिः
चतुर्थी	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
पंचमी	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
षष्ठी	एतस्याः	एतयोः, एनयोः	एतासाम्
सप्तमी	एतस्याम्	एतयोः, एनयोः	एतासु

नपुंसकलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एतत्, द्	एते	एतानि
द्वितीया	एतत्, द्, एनत्, द्	एते, एने	एतानि, एनानि
तृतीया	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः
चतुर्थी	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पंचमी	एतस्मात्, द्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
षष्ठी	एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्
सप्तमी	एतस्मिन्	एतयोः, एनयोः	एतेषु

प्रश्नवाची सर्वनाम 'कौन, क्या' के लिए संस्कृत में 'किम्' शब्द का प्रयोग होता है। इसके रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं। 'किम्' शब्द के साथ प्रथम-पुरुष की क्रिया लगती है।

किम्—कौन

पुंल्लिग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कः	कौ	के
द्वितीया	कम्	कौ	कान्
तृतीया	केन	काभ्याम	कैः
चतुर्थी	कस्मै	काभ्याम	केभ्यः
पंचमी	कस्मात्, द्	काभ्याम	केभ्यः
षष्ठी	कस्य	कयोः	केषाम्
सप्तमी	कस्मिन	कयोः	केषु

स्त्रीलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	का	के	काः
द्वितीया	काम्	के	काः
तृतीया	कया	काभ्याम्	काभिः
चतुर्थी	कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
पंचमी	कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
षष्ठी	कस्याः	कयोः	कासाम्
सप्तमी	कस्याम्	कयोः	कासु

नपुंसकलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	किम्	के	कानि
द्वितीया	किम्	के	कानि
तृतीया	केन	काभ्याम्	कैः
चतुर्थी	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पंचमी	कस्मात्, द्	काभ्याम्	केभ्यः
षष्ठी	कस्य	कयोः	केषाम्
सप्तमी	कस्मिन्	कयोः	केषु

अस्मद् शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में एक समान चलते हैं। वक्ता चाहे पुरुष हो अथवा स्त्री अथवा नपुँसकलिंग में हो, अपने लिए 'अहम्' शब्द का प्रयोग करता है। 'अस्मद्' शब्द के साथ उत्तम-पुरुष की क्रिया लगती है।

अस्मद्

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, नः
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
चतुर्थी	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, नः
पंचमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
षष्ठी	मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम्, नः
सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

'युष्मद्' शब्द के रूप लिङ्ग के अनुसार नहीं बदलते। श्रोता चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष अथवा नपुंसकलिंग में हो, उसके लिए 'त्वम्' शब्द का ही प्रयोग होता है। 'युष्मद्' शब्द के साथ मध्यमपुरुषवाची क्रिया का प्रयोग होता है।

युष्मद्

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, वः
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
चतुर्थी	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वाम्	युष्मभ्यम्, वः
पंचमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
षष्ठी	तव, ते	युवयोः, वाम्	युष्माकम्, वः
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

पुंल्लिग

मरुत्—हवा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मरुत्	मरुतौ	मरुतः
द्वितीया	मरुतम्	मरुतौ	मरुतः
तृतीया	मरुता	मरुद्भ्याम्	मरुद्भिः
चतुर्थी	मरुते	मरुद्भ्याम्	मरुद्भ्यः
पंचमी	मरुतः	मरुद्भ्याम्	मरुद्भ्यः
षष्ठी	गरुतः	मरुतोः	मरुताम्
सप्तमी	मरुति	मरुतोः	मरुत्सु
सम्बोधन	हे मरुत्	हे मरुतौ	हे मरुतः

पुंल्लिग

वलवत्—वलवान्

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वलवान्	वलवन्तौ	वलवन्तः
द्वितीया	वलवन्तम्	वलवन्तौ	वलवतः
तृतीया	वलवता	वलवद्भ्याम्	वलवद्भिः
चतुर्थी	वलवते	वलवद्भ्याम्	वलवद्भ्यः
पंचमी	वलवतः	वलवद्भ्याम्	वलवद्भ्यः
षष्ठी	वलवतः	वलवतोः	वलवताम्
सप्तमी	वलवति	वलवतोः	वलवत्सु
सम्बोधन	हे वलवन्	हे वलवन्तौ	हे वलवन्तः

पुंल्लिग

गतवत्—गया हुआ

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गतवान्	गतवन्तौ	गतवन्तः
द्वितीया	गतवन्तम्	गतवन्तौ	गतवतः
तृतीया	गतवता	गतवद्भ्याम्	गतवद्भिः
चतुर्थी	गतवते	गतवद्भ्याम्	गतवद्भ्यः
पंचमी	गतवतः	गतवद्भ्याम्	गतवद्भ्यः
षष्ठी	गतवतः	गतवतोः	गतवताम्
सप्तमी	गतवति	गतवतोः	गतवत्सु
सम्बोधन	हे गतवन्	हे गतवन्तौ	हे गतवन्तः

पुंल्लिग

राजन्—राजा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	राजा	राजानौ	राजानः
द्वितीया	राजानम्	राजानौ	राज्ञः
तृतीया	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
चतुर्थी	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
पंचमी	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
षष्ठी	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
सप्तमी	राज्ञि	राज्ञोः	राजसु
सम्बोधन	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः

पुंल्लिग

आत्मन्—आत्मा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
द्वितीया	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मनः
तृतीया	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः
चतुर्थी	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
पंचमी	आत्मनः	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
षष्ठी	आत्मनः	आत्मनोः	आत्मनाम्
सप्तमी	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु
सम्बोधन	हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मानः

पुंल्लिग

धनिन्—धनवान्

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	धनी	धनिनौ	धनिन:
द्वितीया	धनिनम्	धनिनौ	धनिन:
तृतीया	धनिना	धनिभ्याम्	धनिभि:
चतुर्थी	धनिने	धनिभ्याम्	धनिभ्य:
पंचमी	धनिन:	धनिभ्याम्	धनिभ्य:
षष्ठी	धनिन:	धनिनो:	धनिनाम्
सप्तमी	धनिनि	धनिनो:	धनिषु
सम्बोधन	हे धनिन्	हे धनिनौ	हे धनिन:

स्त्रीलिंग

वाच्—वाणी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	वाक्-ग्	वाचौ	वाच:
द्वितीया	वाचम्	वाचौ	वाच:
तृतीया	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भि:
चतुर्थी	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्य:
पंचमी	वाच:	वाग्भ्याम्	वाग्भ्य:
षष्ठी	वाच:	वाचो:	वााचाम्
सप्तमी	वाचि	वाचो:	वाक्षु
सम्बोधन	हे वाक्-ग्	हे वाचौ	हे वाच:

स्त्रीलिंग

सरित्—नदी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	सरित्, सरिद्	सरितौ	सरित:
द्वितीया	सरितम्	सरितौ	सरित:
तृतीया	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भि:
चतुर्थी	सरिते	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्य:
पंचमी	सरित:	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्य:
षष्ठी	सरित:	सरितो:	सरिताम्
सप्तमी	सरिति	सरितो:	सरित्सु
सम्बोधन	हे सरित्, हे सरिद्	हे सरितौ	हे सरित:

स्त्रीलिंग

परिषत्—सभा

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	परिषत्, परिषद्	परिषदौ	परिषदः
द्वितीया	परिषदम्	परिषदौ	परिषदः
तृतीया	परिषदा	परिषद्भ्याम्	परिषद्भिः
चतुर्थी	परिषदे	परिषद्भ्याम्	परिषद्भ्यः
पंचमी	परिषदः	परिषद्भ्याम्	परिषद्भ्यः
षष्ठी	परिषदः	परिषदोः	परिषदाम्
सप्तमी	परिषदि	परिषदोः	परिषत्सु
सम्बोधन	हे परिषत्-द्	हे परिषदौ	हे परिषदः

स्त्रीलिंग

विपद्—विपत्ति

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विपत्, विपद्	विपदौ	विपदः
द्वितीया	विपदम्	विपदौ	विपदः
तृतीया	विपदा	विपद्भ्याम्	विपद्भिः
चतुर्थी	विपदे	विपद्भ्याम्	विपद्भ्यः
पंचमी	विपदः	विपद्भ्याम्	विपद्भ्यः
षष्ठी	विपदः	विपदोः	विपदाम्
सप्तमी	विपदि	विपदोः	विपत्सु
सम्बोधन	हे विपत्, विपद्	हे विपदौ	हे विपदः

नपुंसकलिंग

जगत्—संसार

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	जगत्, जगद्	जगती	जगन्ति
द्वितीया	जगत्, जगद्	जगती	जगन्ति
तृतीया	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः
चतुर्थी	जगते	जगद्भ्याम्	जगद्भ्यः
पंचमी	जगतः	जगद्भ्याम्	जगद्भ्यः
षष्ठी	जगतः	जगतोः	जगताम्
सप्तमी	जगति	जगतोः	जगत्सु
सम्बोधन	हे जगत्, हे जगद्	हे जगती	हे जगन्ति

नपुंसकलिंग

नामन्—नाम

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
द्वितीया	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
तृतीया	नाम्ना	नामभ्याम	नामभिः
चतुर्थी	नाम्ने	नामभ्याम	नामभ्यः
पंचमी	नाम्नः	नामभ्याम्	नामभ्यः
षष्ठी	नाम्नः	नाम्नोः	नाम्नाम्
सप्तमी	नाम्नि, नामनि	नाम्नोः	नामसु
सम्बोधन	हे नाम, नामन्	हे नाम्नी, नामनी	हे नामानि

प्रत्यय विचार—प्रत्यय वह अक्षर होता है जो किसी धातु या मूल शब्द के अन्त में जोड़ा जाए। पीछे नाम के आगे सुप् प्रत्यय (सात विभक्तियों के रुप में) और धातुओं के आगे तिङ्-प्रत्यय (लकार विभक्तियों के रुप में) आ चुके हैं। इनके अतिरिक्त-नामों और धातुओं के बाद और प्रत्यय भी आते हैं। इन्हें क्रमशः तद्धित-प्रत्यय और कृत्-प्रत्यय कहते हैं। तद्धित प्रत्ययान्त शब्दों को तद्धितान्त और कृत् प्रत्ययान्त शब्दों को कृदन्त कहते हैं।

पाठ्यक्रम में कृत्-प्रत्यय अभिप्रेत होने के कारण यहाँ उन्हीं का विवेचन किया जाएगा।

कृत् प्रत्यय—धातुओं के साथ कृत्-प्रत्यय लगने से संज्ञा, विशेषण, अव्यय और क्रिया रूप बनते हैं।

धातु से विशेषण—नी से (अक) नायक-ले जाने वाला, कृ से (तृ) कर्ता-करने वाला।

भाववाचक संज्ञा—भू से (अन) भवन-होना, कृ से (ति) कृति—कार्य।

धातु से भाववाचक अव्यय–गम् से (तुम्) गन्तुम्-जाने के लिए, जि से (त्वा) जित्वा—जीतकर।

धातु से क्रियारूप पद–जि से (त) जित-जीता गया, भू से (तवत्) भूतवत्-हुआ, गम् से (तव्य) गन्तव्य—जाने योग्य, जाना चाहिए।

अव्ययों को छोड़कर शेष कृदन्त शब्दों की रूपावली नामों के समान सभी लिङ्गों में होती है।

यहाँ क्त, क्तवतु, क्त्वा (ल्यप्), तुमुन्, तव्य, अनीय एवं यत् अभिप्रेत हैं; अतः उन्हीं का विवेचन किया जाएगा।

भूतकाल के कृत्प्रत्यय

क्त एवं क्तवतु—भूतकाल के अर्थ में प्रधानतः दो प्रत्यय हैं— क्त (त) और

क्तवतु (तवत्) इन दोनों प्रत्ययों को "निष्ठा" कहते हैं। निष्ठा शब्द का यौगिक अर्थ है–'समाप्ति'। क्त और क्तवतु किसी कार्य की समाप्ति का वोध कराते हैं, इसीलिए इनको निष्ठा (समाप्ति) कहते हैं जैसे—'तेन भुक्तम्' – यहाँ भुज् धातु में क्त प्रत्यय लगाने से यह तात्पर्य निकला कि भोजन का कार्य समाप्त हो गया; सोऽपराधं कृतवान्–यहाँ क्तवतु प्रत्यय से यह निश्चय हुआ कि उसने अपराध कर डाला-करने का कार्य समाप्त हो गया। सारांश यह है कि क्त और क्तवतु समाप्ति बोधक प्रत्यय हैं। ये दोनों प्रत्यय प्रायः सभी धातुओं के अनन्तर भूतकाल अथवा समाप्ति का अर्थ वताने के लिए लगाये जाते हैं।

क्त–क्त के क् का लोप हो जाता है। 'त' ही धातुओं के साथ जुड़ता है यथा-

भू+क्त=भूत—हुआ, हो गया।

इसी प्रकार–जित=जीता, कृत=किया, स्मृत=स्मरण किया, मृत=मरा, श्रुत=सुना, गत=गया, पीत=पिया, स्थित=ठहरा, दत्त=दिया, सुप्त=सोया आदि शब्द वनते हैं।

कुछ धातुओं के साथ त से पूर्व इ भी लगती है। जैसे—पठित=पढ़ा, चोरित =चुराया, पतित=गिरा, सेवित=सेवा की, हसित=हँसा, कथित=कहा इत्यादि शब्द वनते हैं।

क्त प्रत्ययान्त शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में और सातों विभक्तियों में विशेष्य के अनुसार होते हैं। यदि विशेष्य पुंल्लिङ्ग हुआ तो पुंल्लिङ्ग यदि स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग हुआ तो स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग।

क्त के प्रयोग में प्रायः कर्त्ता तृतीयान्त और कर्म प्रथमान्त होता है और क्रिया के पुरुष और वचन कर्म (प्रथमान्त) के अनुसार होंगे। जैसे—रामेण रावणः हतः (राम से रावण मारा गया)।

इसमें रावण (कर्म] प्रथमा के एकवचन में होने से हतः (क्तान्त) क्रिया भी उसी तरह प्रथमा-एकवचन में है। दोनों का पुरुष भी प्रथम ही है।

जब क्तान्त क्रिया अकर्मक धातु की वनी हो तो कर्त्ता तृतीयान्त और क्तान्त रूप सदा नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा एकवचनान्त रहता है। (धातु के अकर्मक होने से कर्म कोई नहीं होता) यथा—शिशुना शयितम् (बच्चे से सोया गया)। मूषिकेण जीवितम् (चूहे से जिया गया)। कुछ अकर्मक धातुओं से वने क्तान्त रूप कर्तृवाच्य की तरह भी प्रयुक्त होते हैं तव ये कर्त्ता के अनुसार विभक्ति, लिङ्ग, वचन धारण करते हैं— देवः गतः। वृक्षः पतितः।

क्तवत्–क्तवत् के क् का भी लोप होकर तवत् रह जाता है। तवत् से पूर्व धातु में वे ही विकार होते हैं, जो क्त से पूर्व होते हैं। किसी धातु के क्तान्त रुप के साथ यदि वत् लगा दें तो वह उसका क्तवत् अन्त रूप वन जाएगा। जैसे—

धातु	क्तान्त रुप	क्तवत् अन्त रूप
भू	भूत	भूतवत्
गम्	गत	गतवत्
दा	दत्त	दत्तवत्
वच्	उक्त	उक्तवत्
सद्	सन्न	सन्नवत्
दश्	दष्ट	दष्टवत्
रञ्ज्	रक्त	रक्तवत्
कृत्	कृत्त	कृत्तवत्
लुप्	लुप्त	लुप्तवत्
हा	हीन	हीनवत्
धु	धुत	धुतवत्

क्त (त) कर्मवाच्य भूत में आता है और क्तवत् (तवत्) सदा कर्तृवाच्य भूत में आता है।

क्तवत् प्रत्ययान्त शब्दों के रुप भी तीनों लिङ्गों में और सातों विभक्तियों में विशेष्य के अनुसार होते है। ये बलवत् के समान बनते हैं।

क्त्वा (ल्यप्)

जब एक काम करके दूसरा काम किया जाता है तो पहले की गई क्रिया को पूर्वकालिक क्रिया कहते हैं। हिन्दी में इसका बोध 'कर' अथवा 'करके' लगाकर होता है, जैसे–राम ने रावण को मारकर विभीषण को राज्य दिया–इस वाक्य में राज्य देने की क्रिया रावण के मारे जाने पर होती है, इसलिए 'मारा जाना' पूर्वकालिक क्रिया होगी। पूर्वकालिक क्रिया और उसके साथ आने वाली क्रिया का कर्त्ता एक होना चाहिए। ऊपर के वाक्य में 'मारकर' और 'दिया' दोनों का कर्त्ता 'राम' है। भिन्न कर्त्ता होने से पूर्वकालिक क्रिया का प्रयोग नहीं हो सकता, जैसे— 'लक्ष्मण ने मेघनाथ को मारकर, राम ने विभीषण को राज्य दिया' यह वाक्य शुद्ध नहीं क्योंकि मारने की क्रिया का कर्त्ता लक्ष्मण, देने की क्रिया का कर्त्ता राम से भिन्न है।

पूर्वकालिक क्रिया का ज्ञान कराने के लिए संस्कृत में धातु के आगे क्त्वा (त्वा) प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—रामः रावणं हत्वा विभीषणाय राज्यं ददौ।

सेट् धातुओं के साथ क्त्वा से पूर्व इ भी लग जाता है। जैसे—खाकर= खादित्वा। हँसकर=हसित्वा। कुछ धातुओं के त्वा युक्त रूप इस प्रकार हैं—

इकार युक्त त्वा	इकार रहित त्वा
पठ्+त्वा=पठित्वा=पढ़कर	गम्+त्वा=गत्वा=जाकर

सेव्+त्वा=सेवित्वा=सेवा करके	स्मृ+त्वा=स्मृत्वा=स्मरण करके
वृध्+त्वा=वर्धित्वा=वढ़कर	पा+त्वा=पीत्वा=पीकर
चुर्+त्वा=चोरयित्वा=चुराकर	लभ्+त्वा=लब्ध्वा=पाकर

क्त्वा को ल्यप् (य)–यदि किसी धातु से पूर्व कोई उपसर्ग लगा हो तो त्वा को ल्यप् (य) हो जाता है । यथा—

आ+गम्+त्वा (य)=आगम्य, आगत्य=आकर

आ+नी+य=आनीय=लाकर

परि+त्यज्+य=परित्यज्य= छोड़कर

प्र+नम्+य=प्रणम्य=प्रणाम करके

उत्+स्था+य=उत्थाय=उठकर

वि+स्मृ+य=विस्मृत्य=भूलकर

प्र+विश्+य=प्रविश्य=घुसकर

उपर्युक्त गम्, नी, जि, त्यज् आदि सभी धातुओं के पूर्व उपसर्ग होने के कारण धातु को ल्यप् (य) प्रत्यय लगा है ।

तव्यत् (तव्य), अनीयर् (अनीय), यत् (य)–विधि (किसी काम को करने की योग्यता या शक्ति) के लिए धातुओं से तव्य, अनीय वा य प्रत्यय लगाए जाते हैं। ये प्रत्यय सदा भाववाच्य और कर्मवाच्य में ही प्रयुक्त होते हैं, कर्तृवाच्य में नहीं । ये विभिन्न अर्थों में भी प्रयुक्त होते हैं । हिन्दी में जो अर्थ 'चाहिए' 'योग्य' इत्यादि के द्वारा प्रकट किया जाता है, प्रायः वही संस्कृत में तव्यत्, अनीयर्, यत् प्रत्यय आदि के द्वारा प्रकट किया जाता है ।

तव्यत् एवं अनीयर्–तव्य से पूर्व कुछ धातुओं के अन्त में इ जोड़ा जाता है किन्तु अनीय से पूर्व नहीं जोड़ा जाता । (अनीय से पूर्व इ कदापि नहीं आता) उदाहरणार्थ—

धातु	तव्य	अनीय
पठ्	पठितव्य	पठनीय
भू	भवितव्य	भवनीय
नी	नेतव्य	नयनीय
दा	दातव्य	दानीय
चर्	चरितव्य	चरणीय
गम्	गन्तव्य	गमनीय

यत्—जब किसी अजन्त धातु के बाद य (यत्) आता है तब आ को ए हो जाता है । जैसे—दा=देय, स्था=स्थेय, गै=गा+य=गेय, ।

य से पूर्व इ को (गुण) ए और उ को ओ हो जाता है । जैसे—चि—चेय, जि—जेय । भू—भो+य=भव्य ।

अन्य धातुओं में कोई परिवर्तन नहीं होता—

पठ्—पठ्य

हस्—हस्य

लभ्—लभ्य

गम्—गम्य

तुमुन्

तुमुन प्रत्यय 'को' 'के लिए' अर्थ में होता है। तुमुन् के 'उन्' का लोप हो जाता है और तुम् शेष रहता है। तुमुन् प्रत्ययान्त अव्यय होता है, अतः रुप नहीं चलते। जब कोई दूसरी क्रिया करने के लिए क्रिया करता है, तब जिस क्रिया के लिए क्रिया की जाती है, उसकी धातु में तुमुन् (तुम्) प्रत्यय लगता है; जैसे-कृष्णं द्रष्टुं याति—कृष्ण को देखने के लिए जाता है। इस वाक्य में दो क्रियाएँ है—देखना और जाना। 'जाने' की क्रिया देखने की क्रिया के निमित्त होती है। 'जाने' का प्रयोजन देखना है इसलिए दृश् में तुमुन् (तुम्) जोड़कर "द्रष्टुम्" बनाया गया। कुछ धातुओं के साथ इ भी लगता है। उदाहरणार्थ—

इ सहित	इ रहित
पठ्+तुम्=पठितुम्=पढ़ने के लिए	पच्+तुम्=पक्तुम्=पकाने के लिए
हस्+तुम्=हसितुम्=हँसने के लिए	वच्+तुम्=वक्तुम्=कहने के लिए
नृत्+तुम्=नर्तितुम्=नाचने के लिए	लभ्+तुम्=लब्धुम्=पाने के लिए
सेव्+तुम्=सेवितुम्=सेवा करने के लिए	स्मृ+तुम्=स्मर्तुम् =स्मरण करने के लिए
चुर्+अय+इ+तुम्=चोरयितुम्= चुराने के लिए	त्यज्+तुम्=त्यक्तुम्=छोड़ने के लिए
	प्रच्छ=प्रष्टुम्=पूछने के लिए
	स्था—स्थातुम्=ठहरने के लिए
	पा—पातुम्= पीने के लिए
	दा—दातुम्=देने के लिए
	गम्=गन्तुम्=जाने के लिए

क्रिया रूप

धातु—व्याकरण प्रक्रिया में सभी शब्दों और विशेषतः क्रिया शब्दों के मूलरूप को धातु कहते हैं। धातु एक प्रकृति (मूलरूप) है जिसके आगे अन्यान्य प्रत्यय लगाकर शब्दों के भिन्न-भिन्न रूप बनते हैं। धातुओं से क्रियापद बनाने के लिए तिप्, तस् आदि विशेष प्रत्यय लगाए जाते हैं। इन प्रत्ययों में प्रारम्भ के नौ—तिप्, तस्, झि,

सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस् परस्मैपद के प्रत्यय कहे जाते हैं। तथा त आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहिङ्, महिङ्—ये नौ आत्मनेपद प्रत्यय कहे जाते हैं।

गण एवं विकरण—धातुओं की अनुरूपता (समानता) के विचार से उनको दस गणों (विभागों) में बांटा हुआ है। प्रत्येक गण का नाम उस गण के पहले धातु से रखा गया है। जैसे—भ्वादि (भू+आदि) गण के धातुओं का पहला धातु भू है और इस गण के धातुओं के रूप भू के समान हैं। गण एवं उनके विकरण निम्नलिखित हैं—

गण	विकरण
१. भ्वादि (भू आदि) गण।	अ
२. अदादि (अद् आदि) गण।	०
३. जुहोत्यादि (जुहोति (हु) आदि) गण।	०
४. दिवादि (दिव् आदि) गण।	य
५. स्वादि (सु आदि) गण।	नु
६. तुदादि (तुद् आदि) गण।	अ
७. रुधादि (रुध् आदि) गण।	न
८. तनादि (तन् आदि) गण।	उ
९. क्र्यादि (क्री आदि) गण।	ना
१०. चुरादि (चुर् आदि) गण।	अय

प्रत्येक गण का अपना कोई न कोई चिह्न होता है, इस चिह्न को 'विकरण' कहते हैं। यह चिह्न धातु और प्रत्यय के मध्य आता है। पठ् धातु के साथ विकरण और प्रत्ययों का मेल—पठ्+अ+ति=पठति, पठ्+अ+तः=पठतः आदि।

काल एवं लकार—संस्कृत व्याकरण में कालों तथा भावों को बताने के लिए क्रियाओं के जो विविध रूप बनते हैं, उन्हें लकार कहा जाता है, वैसे लकार तो दस हैं किन्तु मुख्यतया निम्न पांच लकारों का ही प्रयोग होता है—

लकार	काल अथवा भाव
लट् लकार	वर्तमान काल
लृट् लकार	भविष्यत्काल
लङ् लकार	भूतकाल
लोट् लकार	आज्ञा में प्रयुक्त
विधिलिङ् लकार	इच्छा, प्रार्थनादि में प्रयुक्त

इनके अतिरिक्त पांच लकार लुङ् (भूत), लिट् (भूत) लुट् (भविष्यत्) लृङ् एवं लेट् लकार हैं।

पुरुष एवं वचन—जैसे संज्ञा शब्दों के तीन पुरुष और तीन वचन होते हैं उसी प्रकार क्रियाओं के भी तीन वचन और तीन पुरुष होते हैं।

प्रथम पुरुष—प्रथम पुरुष वह होता है जो न स्वयं हो और न कोई सामने खड़ा हुआ व्यक्ति हो, अर्थात् अन्य हो। इसलिए प्रथम पुरुष को अन्य पुरुष भी कहते हैं। जैसे—सः गच्छति—वह जाता है। यहां वह शब्द अन्य पुरुष है।

मध्यम पुरुष—मध्यम पुरुष उसके लिए आता है जो बातचीत के समय सामने खड़ा हो। जैसे—त्वं वदसि—तू बोलता है।

उत्तम पुरुष—उत्तम पुरुष वक्ता के अपने लिए प्रयुक्त होता है। यथा—अहं चलामि—मैं चलता हूँ।

उत्तम पुरुष की क्रिया का कर्त्ता अस्मद्, मध्यम पुरुष की क्रिया का युष्मद्, प्रथम पुरुष की क्रिया का कर्त्ता इनसे भिन्न कोई होता है।

लकार की विभक्ति के जिस रूप से यह पता चले कि पुरुष की संख्या क्या है, उस रूप को उस लकार का वचन कहते हैं। अतः प्रत्येक पुरुष के तीन वचन हैं—एक वचन, द्विवचन, बहुवचन। एक के लिए एकवचन, दो के लिए द्विवचन और दो से अधिक के लिए बहुवचन आते हैं।

मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष के कर्त्ताओं का दोनों लिङ्गों (पुंल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग) में प्रयोग होता है। जैसे—मध्यम पुरुष—

त्वम्—तू पुरुष या स्त्री।

युवाम्—तुम दोनों पुरुष या स्त्री।

यूयम्—तुम सब पुरुष या स्त्री।

उत्तम पुरुष

अहम्—मैं पुरुष या स्त्री।

आवाम्—हम दोनों पुरुष या स्त्री।

वयम्—हम सब पुरुष या स्त्री।

पद-विभाग—प्रत्येक गण की धातुओं में कई धातु परस्मैपदी, कई आत्मनेपदी और कई उभयपदी हैं। परस्मैपद का सीधा अर्थ है 'वह पद जो दूसरों के लिए हो' और आत्मनेपद का अर्थ है—'वह पद जो अपने लिए हो।'

वाच्य—क्रिया बनाने के लिए धातुओं के रूप तीन वाच्यों में होते हैं—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। हिन्दी में भी इन तीनों प्रयोगों की प्रथा है, जैसे—मैं खाना खाता हूँ। (अहं भोजनं खादामि)—यह कर्तृवाच्य में, मुझसे खाना खाया जाता है (मया भोजनं खाद्यते) यह कर्मवाच्य में तथा मुझसे चला नहीं जाता (मया न चल्यते), यह भाववाच्य में। रूपरचना की दृष्टि से कर्मवाच्य और भाववाच्य में अन्तर नहीं है। ये रूप बनाने के लिए धातु के आगे 'य' लगता है और आत्मनेपद के प्रत्यय लगते हैं।

परस्मैपद

वद्– बोलना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	वदति	वदतः	वदन्ति
मध्यम पुरुष	वदसि	वदथः	वदथ
उत्तम पुरुष	वदामि	वदावः	वदामः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	वदतु	वदताम्	वदन्तु
मध्यम पुरुष	वद	वदतम्	वदत
उत्तम पुरुष	वदानि	वदाव	वदाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अवदत्	अवदताम्	अवदन्
मध्यम पुरुष	अवदः	अवदतम्	अवदत
उत्तम पुरुष	अवदम्	अवदाव	अवदाम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	वदिष्यति	वदिष्यतः	वदिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	वदिष्यसि	वदिष्यथः	वदिष्यथ
उत्तम पुरुष	वदिष्यामि	वदिष्यावः	वदिष्यामः

परस्मैपद

दृश्—देखना

लट् आदि में दृश् को पश्य होगा ।

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
मध्यम पुरुष	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
उत्तम पुरुष	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	पश्यतु	पश्यताम्	पश्यन्तु
मध्यम पुरुष	पश्य	पश्यतम्	पश्यत
उत्तम पुरुष	पश्यानि	पश्याव	पश्याम

लङ्

	एववचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्
मध्यम पुरुष	अपश्यः	अपश्यतम्	अपश्यत
उत्तम पुरुष	अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
मध्यम पुरुष	द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ
उत्तम पुरुष	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः

परस्मैपद

हस्—हंसना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	हसति	हसतः	हसन्ति
मध्यम पुरुष	हससि	हसथः	हसथ
उत्तम पुरुष	हसामि	हसावः	हसामः

लोट्

	एकवचन	द्विवचान	बहुवचान
प्रथम पुरुष	हसतु	हसताम्	हसन्तु
मध्यम पुरुष	हस	हसतम्	हसत
उत्तम पुरुष	हसानि	हसाव	हसाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अहसत्	अहसताम्	अहसन्
मध्यम पुरुष	अहसः	अहसतम्	अहसत
उत्तम पुरुष	अहसम्	अहसाव	अहसाम

लृट्

	एकवचान	द्विवचान	वहुवचान
प्रथम पुरुष	हसिष्यति	हसिष्यतः	हसिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	हसिष्यसि	हसिष्यथः	हसिष्यथ
उत्तम पुरुष	हसिष्यामि	हसिष्यावः	हसिष्यामः

परस्मैपद

पा—पीना

लट् आदि में 'पा' को 'पिव्' होगा।

लट्

	एकवचान	द्विवचान	वहुवचान
प्रथम पुरुष	पिवति	पिवतः	पिवन्ति
मध्यम पुरुष	पिवसि	पिवथः	पिवथ
उत्तम पुरुष	पिवामि	पिवावः	पिवामः

लोट्

	एकवचान	द्विवचान	वहुवचान
प्रथम पुरुष	पिवतु	पिवताम्	पिवन्तु
मध्यम पुरुष	पिव	पिवतम्	पिवत
उत्तम पुरुष	पिवानि	पिवाव	पिवाम

लङ्

	एकवचान	द्विवचान	वहुवचान
प्रथम पुरुष	अपिवत्	अपिवताम्	अपिवन्
मध्यम पुरुष	अपिवः	अपिवतम्	अपिवत
उत्तम पुरुष	अपिवम्	अपिवाव	अपिवाम

लृट्

	एकवचान	द्विवचान	वहुवचान
प्रथम पुरुष	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
मध्यम पुरुष	पास्यसि	पास्यथः	पास्यथ
उत्तम पुरुष	पास्यामि	पास्यावः	पास्यामः

परस्मैपद

खाद्—खाना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	खादति	खादतः	खादन्ति
मध्यम पुरुष	खादसि	खादथः	खादथ
उत्तम पुरुष	खादामि	खादावः	खादामः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	खादतु	खादताम्	खादन्तु
मध्यम पुरुष	खाद	खादतम्	खादत
उत्तम पुरुष	खादानि	खादाव	खादाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अखादत्	अखादताम्	अखादन्
मध्यम पुरुष	अखादः	अखादतम्	अखादत
उत्तम पुरुष	अखादम्	अखादाव	अखादाम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	खादिष्यति	खादिष्यतः	खादिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	खादिष्यसि	खादिष्यथः	खादिष्यथ
उत्तम पुरुष	खादिष्यामि	खादिष्यावः	खादिष्यामः

परस्मैपद

जि—जीतना (जे+अ=जय)

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जयति	जयतः	जयन्ति
मध्यम पुरुष	जयसि	जयथः	जयथ
उत्तम पुरुष	जयामि	जयावः	जयामः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जयतु	जयताम्	जयन्तु
मध्यम पुरुष	जय	जयतम्	जयत
उत्तम पुरुष	जयानि	जयाव	जयाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अजयत्	अजयताम्	अजयन्
मध्यम पुरुष	अजयः	अजयतम्	अजयत
उत्तम पुरुष	अजयम्	अजयाव	अजयाम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति
मध्यम पुरुष	जेष्यसि	जेष्यथः	जेष्यथ
उत्तम पुरुष	जेष्यामि	जेष्यावः	जेष्यामः

उभयपदी

परस्मैपद

नी=ले जाना (ने+अ=नय)

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नयति	नयतः	नयन्ति
मध्यम पुरुष	नयसि	नयथः	नयथ
उत्तम पुरुष	नयामि	नयावः	नयामः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नयतु	नयताम्	नयन्तु
मध्यम पुरुष	नय	नयतम्	नयत
उत्तम पुरुष	नयानि	नयाव	नयाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अनयत्	अनयताम्	अनयन्
मध्यम पुरुष	अनयः	अनयतम्	अनयत
उत्तम पुरुष	अनयम्	अनयाव	अनयाम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति
मध्यम पुरुष	नेष्यसि	नेष्यथः	नेष्यथ
उत्तम पुरुष	नेष्यामि	नेष्यावः	नेष्यामः

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नयते	नयेते	नयन्ते
मध्यम पुरुष	नयसे	नयेथे	नयध्वे
उत्तम पुरुष	नये	नयावहे	नयामहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नयताम्	नयेताम्	नयन्ताम्
मध्यम पुरुष	नयस्व	नयेथाम्	नयध्वम्
उत्तम पुरुष	नयै	नयावहै	नयामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अनयत	अनयेताम्	अनयन्त
मध्यम पुरुष	अनयथाः	अनयेथाम्	अनयध्वम्
उत्तम पुरुष	अनये	अनयावहि	अनयामहि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
मध्यम पुरुष	नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे
उत्तम पुरुष	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे

आत्मनेपद

सेव्—सेवा करना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सेवते	सेवेते	सेवन्ते
मध्यम पुरुष	सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे
उत्तम पुरुष	सेवे	सेवावहे	सेवामहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्
मध्यम पुरुष	सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्
उत्तम पुरुष	सेवै	सेवावहै	सेवामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	असेवत	असेवेताम्	असेवन्त
मध्यम पुरुष	असेवथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्
उत्तम पुरुष	असेवे	असेवावहि	असेवामहि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते
मध्यम पुरुष	सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे
उत्तम पुरुष	सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे

आत्मनेपद

लभ्—पाना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	लभते	लभेते	लभन्ते
मध्यम पुरुष	लभसे	लभेथे	लभध्वे
उत्तम पुरुष	लभे	लभावहे	लभामहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
मध्यम पुरुष	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
उत्तम पुरुष	लभै	लभावहै	लभामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	अलभत	अलभेताम्	अलभन्त
मध्यम पुरुष	अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्
उत्तम पुरुष	अलभे	अलभावहि	अलभामहि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
मध्यम पुरुष	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उत्तम पुरुष	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

आत्मनेपद

रभ्—आरम्भ करना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	रभते	रभेते	रभन्ते
मध्यम पुरुष	रभसे	रभेथे	रभध्वे
उत्तम पुरुष	रभे	रभावहे	रभामहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	रभताम्	रभेताम्	रभन्ताम्
मध्यम पुरुष	रभस्व	रभेथाम्	रभध्वम्
उत्तम पुरुष	रभै	रभावहै	रभामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	अरभत	अरभेताम्	अरभन्त
मध्यम पुरुष	अरभथाः	अरभेथाम्	अरभध्वम्
उत्तम पुरुष	अरभे	अरभावहि	अरभामहि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	रप्स्यते	रप्स्येते	रप्स्यन्ते
मध्यम पुरुष	रप्स्यसे	रप्स्येथे	रप्स्यध्वे
उत्तम पुरुष	रप्स्ये	रप्स्यावहे	रप्स्यामहे

उभयपदी

परस्मैपद

ब्रू—कहना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ब्रवीति, आह	ब्रूतः, आहतुः	ब्रुवन्ति, आहुः
मध्यम पुरुष	ब्रवीषि, आत्थ	ब्रूथः, आहथुः	ब्रूथ
उत्तम पुरुष	ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ब्रवीतु	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु
मध्यम पुरुष	ब्रूहि	ब्रूतम्	ब्रूत
उत्तम पुरुष	ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रुवन्
मध्यम पुरुष	अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत
उत्तम पुरुष	अब्रवम्	अब्रूम	अब्रूव

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति
मध्यम पुरुष	वक्ष्यसि	वक्ष्यथः	वक्ष्यथ
उत्तम पुरुष	वक्ष्यामि	वक्ष्यावः	वक्ष्यामः

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
मध्यम पुरुष	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
उत्तम पुरुष	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पु प	ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
मध्यम पुरुष	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्
उत्तम पुरुष	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
मध्यम पुरुष	अब्रूथाः	अब्रुवाथाम्	अब्रूध्वम्
उत्तम पुरुष	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
मध्यम पुरुष	वक्ष्यसे	वक्ष्येथे	वक्ष्यध्वे
उत्तम पुरुष	वक्ष्ये	वक्ष्यावहे	वक्ष्यामहे

परस्मैपद

अस्—होना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	अस्ति	स्तः	सन्ति
मध्यम पुरुष	असि	स्थः	स्थ
उत्तम पुरुष	अस्मि	स्वः	स्मः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	अस्तु, स्तात्	स्ताम्	सन्तु
मध्यम पुरुष	एधि, स्तात्	स्तम्	स्त
उत्तम पुरुष	असानि	असाव	असाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
मध्यम पुरुष	आसीः	आस्तम्	आस्त
उत्तम पुरुष	आसम्	आस्व	आस्म्

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
मध्यम पुरुष	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उत्तम पुरुष	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

परस्मैपद

हन्—मारना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	हन्ति	हतः	घ्नन्ति
मध्यम पुरुष	हन्सि	हथः	हथ
उत्तम पुरुष	हन्मि	हन्वः	हन्मः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	हन्तु	हताम्	घ्नन्तु
मध्यम पुरुष	जहि	हतम्	हत
उत्तम पुरुष	हनानि	हनाव	हनाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
मध्यम पुरुष	अहन्	अहतम्	अहत
उत्तम पुरुष	अहनम्	अहन्व	अहन्म

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	हनिष्यसि	हनिष्यथः	हनिष्यथ
उत्तम पुरुष	हनिष्यामि	हनिष्यावः	हनिष्यामः

उभयपदी

परस्मैपद

दा—देना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	ददाति	दत्तः	ददति
मध्यम पुरुष	ददासि	दत्थः	दत्थ
उत्तम पुरुष	ददामि	दद्वः	दद्मः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	ददातु	दत्ताम्	ददत
मध्यम पुरुष	देहि	दत्तम्	दत्त
उत्तम पुरुष	ददानि	ददाव	ददाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
मध्यम पुरुष	अददाः	अदत्तम्	अदत्त
उत्तम पुरुष	अददाम्	अदद्व	अदद्म

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
मध्यम पुरुष	दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
उत्तम पुरुष	दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	दत्ते	ददाते	ददते
मध्यम पुरुष	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
उत्तम पुरुष	ददे	दद्वहे	दद्महे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम
मध्यम पुरुष	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
उत्तम पुरुष	ददै	ददावहै	ददामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अदत्त	अददाताम्	अददत
मध्यम पुरुष	अदत्था:	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
उत्तम पुरुष	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
मध्यम पुरुष	दास्यसे	दास्येते	दास्यध्वे
उत्तम पुरुष	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

परस्मैपद

दिव्—चकमना आदि

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	दीव्यति	दीव्यत:	दीव्यन्ति
मध्यम पुरुष	दीव्यसि	दीव्यथ:	दीव्यथ
उत्तम पुरुष	दीव्यामि	दीव्याव:	दीव्याम:

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	दीव्यतु	दीव्यताम्	दीव्यन्तु
मध्यम पुरुष	दीव्य	दीव्यतम्	दीव्यत
उत्तम पुरुष	दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्
मध्यम पुरुष	अदीव्य:	अदीव्यतम्	अदीव्यत
उत्तम पुरुष	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	देविष्यति	देविष्यत:	देविष्यन्ति
मध्यम पुरुष	देविष्यसि	देविष्यथ:	देविष्यथ
उत्तम पुरुष	देविष्यामि	देविष्याव:	देविष्याम:

मृ—मरना

मृ धातु लृट्, लुट्, लृङ् और लिट् में परस्मैपदी है, अन्यत्र आत्मनेपदी ।

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	म्रियते	म्रियेते	म्रियन्ते
मध्यम पुरुष	म्रियसे	म्रियेथे	म्रियध्वे
उत्तम पुरुष	म्रिये	म्रियावहे	म्रियामहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	म्रियताम्	म्रियेताम्	म्रियन्ताम्
मध्यम पुरुष	म्रियस्व	म्रियेथाम्	म्रियध्वम्
उत्तम पुरुष	म्रियै	म्रियावहै	म्रियामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अम्रियत	अम्रियेताम्	अम्रियन्त
मध्यम पुरुष	अम्रियथा:	अम्रियेथाम्	अम्रियध्वम्
उत्तम पुरुष	अम्रिये	अम्रियावहि	अम्रियामहिं

लृट्.

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	मरिष्यति	मरिष्यत:	मरिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	मरिष्यसि	मरिष्यथ:	मरिष्यथ
उत्तम पुरुष	मरिष्यामि	मरिष्याव:	मरिष्याम:

परस्मैपद

नृत्—नाचना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नृत्यति	नृत्यत:	नृत्यन्ति
मध्यम पुरुष	नृत्यसि	नृत्यथ:	नृत्यथ
उत्तम पुरुष	नृत्यामि	नृत्याव:	नृत्याम:

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नृत्यतु	नृत्यताम्	नृत्यन्तु
मध्यम पुरुष	नृत्य	नृत्यतम्	नृत्यत
उत्तम पुरुष	नृत्यानि	नृत्याव	नृत्याम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अनृत्यत्	अनृत्यताम्	अनृत्यन्
मध्यम पुरुष	अनृत्य:	अनृत्यतम्	अनृत्यत
उत्तम पुरुष	अनृत्यम्	अनृत्याव	अनृत्याम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नर्तिष्यति, नर्त्स्यति	नर्तिष्यतः	नर्तिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	नर्तिष्यसि, नर्त्स्यसि	नर्तिष्यथः	नर्तिष्यथ
उत्तम पुरुष	नर्तिष्यामि, नर्त्स्यामि	नर्तिष्यावः	नर्तिष्यामः

उभयपदी

परस्मैपद

चि—इकट्ठा करना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति
मध्यम पुरुष	चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ
उत्तम पुरुष	चिनोमि	चिनुवः, चिन्वः	चिनुमः, चिन्मः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चिनोतु	चिनुताम्	चिन्वन्तु
मध्यम पुरुष	चिनु	चिनुतम्	चिनुत
उत्तम पुरुष	चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्
मध्यम पुरुष	अचिनोः	अचिनुतम्	अचिनुत
उत्तम पुरुष	अचिनवम्	अचिनुव	अचिनुम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चेष्यति	चेष्यतः	चेष्यन्ति
मध्यम पुरुष	चेष्यसि	चेष्यथः	चेष्यथ
उत्तम पुरुष	चेष्यामि	चेष्यावः	चेष्यामः

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चिनुते	चिन्वाते	चिन्वते
मध्यम पुरुष	चिनुषे	चिन्वाथे	चिनुध्वे
उत्तम पुरुष	चिन्वे	चिनुवहे, चिन्वहे	चिनुमहे, चिन्महे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चिनुताम्	चिन्वाताम्	चिन्वताम्
मध्यम पुरुष	चिनुष्व	चिन्वाथाम्	चिनुध्वम्
उत्तम पुरुष	चिनवै	चिन्वावहै	चिन्वामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अचिनुत	अचिन्वाताम्	अचिन्वत
मध्यम पुरुष	अचिनुथाः	अचिन्वाथाम्	अचिनुध्वम्
उत्तम पुरुष	अचिन्वि	अचिनुवहि, अचिन्वहि	अचिनुमहि, अचिन्महि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चेष्यते	चेष्येते	चेष्यन्ते
मध्यम पुरुष	चेष्यसे	चेष्येथे	चेष्यध्वे
उत्तम पुरुष	चेष्ये	चेष्यावहे	चेष्यामहे

उभयपदी

परस्मैपद

भिद्—तोड़ना

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भिनत्ति	भिन्तः	भिन्दन्ति
मध्यम पुरुष	भिनत्सि	भिन्त्थः	भिन्त्थ
उत्तम पुरुष	भिनद्मि	भिन्द्वः	भिन्द्मः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भिनत्तु	भिन्ताम्	भिन्दन्तु
मध्यम पुरुष	भिन्द्धि	भिन्तम्	भिन्त
उत्तम पुरुष	भिनदानि	भिनदाव	भिनदाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अभिनत्	अभिन्ताम्	अभिन्दन्
मध्यम पुरुष	अभिनः	अभिन्तम्	अभिन्त
उत्तम पुरुष	अभिनदम्	अभिन्द्व	अभिन्द्म

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भेत्स्यति	भेत्स्यतः	भेत्स्यन्ति
मध्यम पुरुष	भेत्स्यसि	भेत्स्यथः	भेत्स्यथ
उत्तम पुरुष	भेत्स्यामि	भेत्स्यावः	भेत्स्यामः

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भिन्ते	भिन्दाते	भिन्दते
मध्यम पुरुष	भिन्त्से	भिन्दाथे	भिन्द्ध्वे
उत्तम पुरुष	भिन्दे	भिन्द्वहे	भिन्द्महे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भिन्ताम्	भिन्दाताम्	भिन्दताम्
मध्यम पुरुष	भिन्त्स्व	भिन्दाथाम्	भिन्द्ध्वम्
उत्तम पुरुष	भिनद	भिनदावहै	भिनदामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अभिन्त	अभिन्दाताम्	अभिन्दत
मध्यम पुरुष	अभिन्त्था:	अभिन्दाथाम्	अभिन्द्ध्वम्
उत्तम पुरुष	अभिन्दि	अभिन्द्वहि	अभिन्द्महि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भेत्स्यते	भेत्स्येते	भेत्स्यन्ते
मध्यम पुरुष	भेत्स्यसे	भेत्स्येथे	भेत्स्यध्वे
उत्तम पुरुष	भेत्स्ये	भेत्स्यावहे	भेत्स्यामहे

परस्मैपद

छिद्—काटना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	छिनत्ति	छिन्त:	छिन्दन्ति
मध्यम पुरुष	छिनत्सि	छिन्त्थ:	छिन्त्थ
उत्तम पुरुष	छिनद्मि	छिन्द्व:	छिन्द्म:

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	छिनत्तु, छिन्तात्	छिन्ताम्	छिन्दन्तु
मध्यम पुरुष	छिन्धि, छिन्तात्	छिन्तम्	छिन्त
उत्तम पुरुष	छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम

लङ्

	एववचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अच्छिनत् द्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्
मध्यम पुरुष	अच्छिन:, अच्छिनत्	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त
उत्तम पुरुष	अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	छेत्स्यति	छेत्स्यतः	छेत्स्यन्ति
मध्यम पुरुष	छेत्स्यसि	छेत्स्यथः	छेत्स्यथ
उत्तम पुरुष	छेत्स्यामि	छेत्स्यावः	छेत्स्यामः

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	छिन्ते	छिन्दाते	छिन्दते
मध्यम पुरुष	छिन्त्से	छिन्दाथे	छिन्द्ध्वे
उत्तम पुरुष	छिन्दे	छिन्द्वहे	छिन्द्महे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	छिन्ताम्	छिन्दाताम्	छिन्दताम्
मध्यम पुरुष	छिन्त्स्व	छिन्दाथाम्	छिन्द्ध्वम्
उत्तम पुरुष	छिनदै	छिनदावहै	छिनदामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	अच्छिन्त	अच्छिन्दातम्	अच्छिन्दत
मध्यम पुरुष	अच्छिन्त्थाः	अच्छिन्दाथाम्	अच्छिन्द्ध्वम्
उत्तम पुरुष	अच्छिन्दि	अच्छिन्द्वहि	अच्छिन्द्महि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	छेत्स्यते	छेत्स्येते	छेत्स्यन्ते
मध्यम पुरुष	छेत्स्यसे	छेत्स्येथे	छेत्स्यध्वे
उत्तम पुरुष	छेत्स्ये	छेत्स्यावहे	छेत्स्यामहे

परस्मैपद

मुच्—छोड़ना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	मुञ्चति	मुञ्चतः	मुञ्चन्ति
मध्यम पुरुष	मुञ्चसि	मुञ्चथः	मुञ्चथ
उत्तम पुरुष	मुञ्चामि	मुञ्चावः	मुञ्चामः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	मुञ्चतु	मुञ्चताम्	मुञ्चन्तु
मध्यम पुरुष	मुञ्च	मुञ्चतम्	मुञ्चत
उत्तम पुरुष	मुञ्चानि	मुञ्चाव	मुञ्चाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	अमुञ्चत्	अमुञ्चताम्	अमुञ्चन्
मध्यम पुरुष	अमुञ्चः	अमुञ्चतम्	अमुञ्चत
उत्तम पुरुष	अमुञ्चम्	अमुञ्चाव	अमुञ्चाम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	मोक्ष्यति	मोक्ष्यतः	मोक्ष्यन्ति
मध्यम पुरुष	मोक्ष्यसि	मोक्ष्यथः	मोक्ष्यथ
उत्तम पुरुष	मोक्ष्यामि	मोक्ष्यावः	मोक्ष्यामः

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	मुञ्चते	मुञ्चेते	मुञ्चन्ते
मध्यम पुरुष	मुञ्चसे	मुञ्चेथे	मुञ्चध्वे
उत्तम पुरुष	मुञ्चे	मुञ्चावहे	मुञ्चामहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	मुञ्चताम्	मुञ्चेताम्	मुञ्चन्ताम्
मध्यम पुरुष	मुञ्चस्व	मुञ्चेथाम्	मुञ्चध्वम्
उत्तम पुरुष	मुञ्चै	मुञ्चावहै	मुञ्चामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	अमुञ्चत	अमुञ्चेताम्	अमुञ्चन्त
मध्यम पुरुष	अमुञ्चथा:	अमुञ्चेथाम्	अमुञ्चध्वम्
उत्तम पुरुष	अमुञ्चे	अमुञ्चावहि	अमुञ्चामहि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	मोक्ष्यते	मोक्ष्येते	मोक्ष्यन्ते
मध्यम पुरुष	मोक्ष्यसे	मोक्ष्येथे	मोक्ष्यध्वे
उत्तम पुरुष	मोक्ष्ये	मोक्ष्यावहे	मोक्ष्यामहे

उभयपदी

परस्मैपद

विद्—लाभ

लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	विन्दति	विन्दत:	विन्दन्ति
मध्यम पुरुष	विन्दसि	विन्दथ:	विन्दथ
उत्तम पुरुष	विन्दामि	विन्दाव:	विन्दाम:

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	विन्दतु	विन्दताम्	विन्दन्तु
मध्यम पुरुष	विन्द	विन्दतम्	विन्दत
उत्तम पुरुष	विन्दानि	विन्दाव	विन्दाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अविन्दत्	अविन्दताम्	अविन्दन्
मध्यम पुरुष	अविन्दः	अविन्दतम्	अविन्दत
उत्तम पुरुष	अविन्दम्	अविन्दाव	अविन्दाम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	वेदिष्यति, वेत्स्यति	वेदिष्यतः, वेत्स्यतः	वेदिष्यन्ति, वेत्स्यन्ति
मध्यम पुरुष	वेदिष्यसि, वेत्स्यसि	वेदिष्यथः, वेत्स्यथः	वेदिष्यथ, वेत्स्यथ
उत्तम पुरुष	वेदिष्यामि, वेत्स्यामि	वेदिष्यावः, वेत्स्यावः	वेदिष्यामः, वेत्स्यामः

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	विन्दते	विन्देते	विन्दन्ते
मध्यम पुरुष	विन्दसे	विन्देथे	विन्दध्वे
उत्तम पुरुष	विन्दे	विन्दावहे	विन्दामहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	विन्दताम्	विन्देताम्	विन्दन्ताम्
मध्यम पुरुष	विन्दस्व	विन्देथाम्	विन्दध्वम्
उत्तम पुरुष	विन्दै	विन्दावहै	विन्दामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अविन्दत	अविन्देताम्	अविन्दन्त
मध्यम पुरुष	अविन्दथाः	अविन्देथाम्	अविन्दध्वम्
उत्तम पुरुष	अविन्दे	अविन्दावहि	अविन्दामहि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	वेदिष्यते-वेत्स्यते	वेदिष्येते-वेत्स्येते	वेदिष्यन्ते-वेत्स्यन्ते
मध्यम पुरुष	वेदिष्यसे-वेत्स्यसे	वेदिष्येथे-वेत्स्येथे	वेदिष्यध्वे-वेत्स्यध्वे
उत्तम पुरुष	वेदिष्ये-वेत्स्ये	वेदिष्यावहे-वेत्स्यावहे	वेदिष्यामहे-वेत्स्यामहे

परस्मैपद

प्रच्छ—पूछना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति
मध्यम पुरुष	पृच्छसि	पृच्छथः	पृच्छथ
उत्तम पुरुष	पृच्छामि	पृच्छावः	पृच्छामः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पृच्छतु	पृच्छताम्	पृच्छन्तु
मध्यम पुरुष	पृच्छ	पृच्छतम्	पृच्छत
उत्तम पुरुष	पृच्छानि	पृच्छाव	पृच्छाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अपृच्छत्	अपृच्छताम्	अपृच्छन्
मध्यम पुरुष	अपृच्छः	अपृच्छतम्	अपृच्छत
उत्तम पुरुष	अपृच्छम्	अपृच्छाव	अपृच्छाम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	प्रक्ष्यति	प्रक्ष्यतः	प्रक्ष्यन्ति
मध्यम पुरुष	प्रक्ष्यसि	प्रक्ष्यथः	प्रक्ष्यथ
उत्तम पुरुष	प्रक्ष्यामि	प्रक्ष्यावः	प्रक्ष्यामः

परस्मैपद

सृज्—रचना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	सृजति	सृजतः	सृजन्ति
मध्यम पुरुष	सृजसि	सृजथः	सृजथ
उत्तम पुरुष	सृजामि	सृजावः	सृजामः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रमथ पुरुष	सृजतु	सृजताम्	सृजन्तु
मध्यम पुरुष	सृज	सृजताम्	सृजत
उत्तम पुरुष	सृजानि	सृजाव	सृजाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	असृजत्	असृजताम्	असृजन्
मध्यम पुरुष	असृजः	असृजतम्	असृजत
उत्तम पुरुष	असृजम्	असृजाव	असृजाम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	स्रक्ष्याति	स्रक्ष्यतः	स्रक्ष्यन्ति
मध्यम पुरुष	स्रक्ष्यसि	स्रक्ष्यथः	स्रक्ष्यथ
उत्तम पुरुष	स्रक्ष्यामि	स्रक्ष्यावः	स्रक्ष्यामः

परस्मैपद

कृ—करना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
मध्यम पुरुष	करोषि	कुरुथः	कुरुथ
उत्तम पुरुष	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु
मध्यम पुरुष	कुरु	कुरुतम्	कुरुत
उत्तम पुरुष	करवाणि	करवाव	करवाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
मध्यम पुरुष	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
उत्तम पुरुष	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
उत्तम पुरुष	करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	कुरुते	कर्वाते	कुर्वते
मध्यम पुरुष	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उत्तम पुरुष	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
मध्यम पुरुष	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उत्तम पुरुष	करवै	करवावहै	करवामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
मध्यम पुरुष	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उत्तम पुरुष	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
मध्यम पुरुष	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
उत्तम पुरुष	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

परस्मैपद

ज्ञा—जानना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जानाति	जानीतः	जानन्ति
मध्यम पुरुष	जानासि	जानीथः	जानीथ
उत्तम पुरुष	जानामि	जानीवः	जानीमः

लोट्

	एकचवन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	जानातु	जानीताम्	जानन्तु
मध्यम पुरुष	जानीहि	जानीतम्	जानीत
उत्तम पुरुष	जानानि	जानाव	जानाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अजानात्	अजानीताम्	अजानन्
मध्यम पुरुष	अजानाः	अजानीतम्	अजानीत
मध्यम पुरुष	अजानाम्	अजानीव	अजानीम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	ज्ञास्यति	ज्ञास्यतः	ज्ञास्यन्ति
मध्यम पुरुष	ज्ञास्यसि	ज्ञास्यथः	ज्ञास्यथ
उत्तम पुरुष	ज्ञास्यामि	ज्ञास्यावः	ज्ञास्यामः

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	जानीते	जानाते	जानते
मध्यम पुरुष	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
उत्तम पुरुष	जाने	जानीवहे	जानीमहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
मध्यम पुरुष	जानीष्व	जानाथाम्	जानीध्वम्
उत्तम पुरुष	जानै	जानावहै	जानामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
मध्यम पुरुष	अजानीथाः	अजानाथाम्	अजानीध्वम्
उत्तम पुरुष	अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते
मध्यम पुरुष	ज्ञास्यसे	ज्ञास्येथे	ज्ञास्यध्वे
उत्तम पुरुष	ज्ञास्ये	ज्ञास्यावहे	ज्ञास्यामहे

परस्मैपद

चुर्—चुराना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति
मध्यम पुरुष	चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ
उत्तम पुरुष	चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु
मध्यम पुरुष	चोरय	चोरयतम्	चोरयत
उत्तम पुरुष	चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्
मध्यम पुरुष	अचोरयः	अचोरयतम्	अचोरयत
उत्तम पुरुष	अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	चोरयिष्यति	चोरयिष्यतः	चोरयिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	चोरयिष्यसि	चोरयिष्यथः	चोरयिष्यथ
उत्तम पुरुष	चोरयिष्यामि	चोरयिष्यावः	चोरयिष्यामः

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते
मध्यम पुरुष	चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे
उत्तम पुरुष	चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्
मध्यम पुरुष	चोरयस्व	चोरयेथाम्	चोरयध्वम्
उत्तम पुरुष	चोरयै	चोरयावहै	चोरयामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त
मध्यम पुरुष	अचोरयथाः	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्
उत्तम पुरुष	अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	चोरयिष्यते	चोरयिष्येते	चोरयिष्यन्ते
मध्यम पुरुष	चोरयिष्यसे	चोरयिष्येथे	चोरयिष्यध्वे
उत्तम पुरुष	चोरयिष्ये	चोरयिष्यावहे	चोरयिष्यामहे

परस्मैपद

कथ्—कहना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	कथयति	कथयतः	कथयन्ति
मध्यम पुरुष	कथयसि	कथयथः	कथयथ
उत्तम पुरुष	कथयामि	कथयावः	कथयामः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	कथयतु	कथयताम्	कथयन्तु
मध्यम पुरुष	कथय	कथयतम्	कथयत
उत्तम पुरुष	कथयानि	कथयाव	कथयाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अकथयत्	अकथयताम्	अकथयन्
मध्यम पुरुष	अकथयः	अकथयतम्	अकथयत
उत्तम पुरुष	अकथयम्	अकथयाव	अकथयाम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	कथयिष्यति	कथयिष्यतः	कथयिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	कथयिष्यसि	कथयिष्यथः	कथयिष्यथ
उत्तम पुरुष	कथयिष्यामि	कथयिष्यावः	कथयिष्यामः

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	कथयते	कथयेते	कथयन्ते
मध्यम पुरुष	कथयसे	कथयेथे	कथयध्वे
उत्तम पुरुष	कथये	कथयावहे	कथयामहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	कथयताम्	कथयेताम्	कथयन्ताम्
मध्यम पुरुष	कथयस्व	कथयेथाम्	कथयध्वम्
उत्तम पुरुष	कथयै	कथयावहै	कथदामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अकथयत	अकथयेताम्	अकथयन्त
मध्यम पुरुष	अकथयथाः	अकथयेथाम्	अकथयध्वम्
उत्तम पु ष	अकथये	अकथयावहि	अकथयामहि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	कथयिष्यते	कथयिष्येते	कथयिष्यन्ते
मध्यम पुरुष	कथयिष्यसे	कथयिष्येथे	कथयिष्यध्वे
उत्तम पुरुष	कथयिष्ये	कथयिष्यावहे	कथयिष्यामहे

परस्मैपद

गण्—गिनना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गणयति	गणयतः	गणयन्ति
मध्यम पुरुष	गणयसि	गणयथः	गणयथ
उत्तम पुरुष	गणयामि	गणयावः	गणयामः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गणयतु	गणयताम्	गणयन्तु
मध्यम पुरुष	गणय	गणयतम्	गणयत
उत्तम पुरुष	गणयानि	गणयाव	गणयाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अगणयत्	अगणयताम्	अगणयन्
मध्यम पुरुष	अगणयः	अगणयतम्	अगणयत
उत्तम पुरुष	अगणयम्	अगणयाव	अगणयाम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गणयिष्यति	गणयिष्यतः	गणयिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	गणयिष्यसि	गणयिष्यथः	गणयिष्यथ
उत्तम पुरुष	गणयिष्यामि	गणयिष्यावः	गणयिष्यामः

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गणयते	गणयेते	गणयन्ते
मध्यम पुरुष	गणयसे	गणयेथे	गणयध्वे
उत्तम पुरुष	गणये	गणयावहे	गणयामहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	गणयताम्	गणयेताम्	गणयन्ताम्
मध्यम पुरुष	गणयस्व	गणयेथाम्	गणयध्वम्
उत्तम पुरुष	गणयै	गणयावहै	गणयामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	अगणयत्	अगणयेताम्	अगणयन्त
मध्यम पुरुष	अगणयथाः	अगणयेथाम्	अगणयध्वम्
उत्तम पुरुष	अगणये	अगणयावहि	अगणयामहि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	गणयिष्यते	गणयिष्येते	गणयिष्यन्ते
मध्यम पुरुष	गणयिष्यसे	गणयिष्येथे	गणयिष्यध्वे
उत्तम पुरुष	गणयिष्ये	गणयिष्यावहे	गणयिष्यामहे

परस्मैपद

भक्ष्—खाना

लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	भक्षयति	भक्षयतः	भक्षयन्ति
मध्यम पुरुष	भक्षयसि	भक्षयथः	भक्षयथ
उत्तम पुरुष	भक्षयामि	भक्षयावः	भक्षयामः

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भक्षयतु	भक्षयताम्	भक्षयन्तु
मध्यम पुरुष	भक्षय	भक्षयतम्	भक्षयत
उत्तम पुरुष	भक्षयाणि	भक्षयाव	भक्षयाम

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथम पुरुष	अभक्षयत्	अभक्षयताम्	अभक्षयन्
मध्यम पुरुष	अभक्षयः	अभक्षयतम्	अभक्षयत
उत्तम पुरुष	अभक्षयम्	अभक्षयाव	अभक्षयाम

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भक्षयिष्यति	भक्षयिष्यतः	भक्षयिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	भक्षयिष्यसि	भक्षयिष्यथः	भक्षयिष्यथ
उत्तम पुरुष	भक्षयिष्यामि	भक्षयिष्यावः	भक्षयिष्यामः

आत्मनेपद

लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भक्षयते	भक्षयेते	भक्षयन्ते
मध्यम पुरुष	भक्षयसे	भक्षयेथे	भक्षयध्वे
उत्तम पुरुष	भक्षये	भक्षयावहे	भक्षयामहे

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भक्षयताम्	भक्षयेताम्	भक्षयन्ताम्
मध्यम पुरुष	भक्षयस्व	भक्षयेथाम्	भक्षयध्वम्
उत्तम पुरुष	भक्षयै	भक्षयावहै	भक्षयामहै

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अभक्षयत	अभक्षयेताम्	अभक्षयन्त
मध्यम पुरुष	अभक्षयथाः	अभक्षयेथाम्	अभक्षयध्वम्
उत्तम पुरुष	अभक्षये	अभक्षयावहि	अभक्षयामहि

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भक्षयिष्यते	भक्षयिष्येते	भक्षयिष्यन्ते
मध्यम पुरुष	भक्षयिष्यसे	भक्षयिष्येथे	भक्षयिष्यध्वे
उत्तम पुरुष	भक्षयिष्ये	भक्षयिष्यावहे	भक्षयिष्यामहे

हमारे प्रकाशन

नाटक

चारदीवारी के पार	सुधीन्द्र कुमार	12.00
दूतावाक्यम् का हिन्दी रूपान्तर	हरिवंश अनेजा	6.50
अपनी अपनी राह	सुधीन्द्र कुमार	12.00

काव्य

धरा की यात्रा	आचार्य छविनाथ त्रिपाठी	18.00
कभी-कभी	आचार्य छविनाथ त्रिपाठी	12.00
गुलरंग (उर्दू)	'जमाल' क़ाइमी	12.00
ज़ख्म आर्ज़ूओं के	महेन्द्र प्रताप 'चाँद'	15 00

कहानी-संकलन

भीगी पाँखें और सवेरा	चन्द्रलेखा शर्मा	12.00
तलवार की चोरी (बाल-कथाएँ)	मदनमोहन श्रीवास्तव	6.00

उपन्यास

होशियार ख़बरदार	सुरजीत	14.00
भोर के आँचल में	धर्म सिंह चौहान	20.00
उल्कापात (वैज्ञानिक उपन्यास)	हरिश्चन्द्र जैन	5.00

प्रचारित साहित्य

संस्कृत वाङ्मय में नेहरू	मधुबाला	25.00

कादम्बरी प्रकाशन
ए-55/1, सुदर्शनपार्क, नयी दिल्ली-110015